◆ जैन साहित्य में ऋषभदेव

- ✻ आगम साहित्य में ऋषभदेव
- ✻ निर्युक्ति साहित्य में ऋषभदेव
- ✻ भाष्य साहित्य में ऋषभदेव
- ✻ चूर्णि साहित्य में ऋषभदेव
- ✻ प्राकृत काव्य साहित्य में ऋषभदेव
- ✻ संस्कृत साहित्य में ऋषभदेव
- ✻ आधुनिक साहित्य में ऋषभदेव

भारतवर्ष के जिन महापुरुषों का मानव-जाति के विचारों पर स्थायी प्रभाव पड़ा है, उनमें भगवान् श्री ऋषभदेव का स्थान प्रमुख है। उनके अप्रतिम व्यक्तित्व और अभूतपूर्व कृतित्व की छाप जन-जीवन पर बहुत ही गहरी है। आज भी अगणित व्यक्तियों का जीवन उनके विमल विचारों से प्रभावित व अनुप्रेरित है। उनके हृदयाकाश में चमकते हुए आकाश-दीप की तरह वे सुशोभित हैं। जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य उनकी गौरवगाथा से छलक रहा है। इतिहास और पुरातत्व उनकी यशोगाथा को गा रहा है। उनका विराट व्यक्तित्व कभी भी देश, काल, सम्प्रदाय, पंथ, प्रान्त और जाति के संकीर्ण घेरे में आबद्ध नहीं रहा। जैन साहित्य में वे आद्य तीर्थङ्करों के रूप में उपास्य रहे हैं तो वैदिक साहित्य में उनके विविध रूप प्राप्त होते हैं। कहीं पर उन्हें ब्रह्मा मानकर उपासना की गई है तो कहीं पर विष्णु और कहीं पर महेश्वर का रूप मानकर अर्चना की गई है। कहीं पर अग्नि, कहीं पर केशी, कहीं पर हिरण्यगर्भ और कहीं पर वातरशना के रूप में उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में उनका ज्योतिर्धर व्यक्तित्व के रूप में उल्लेख हुआ है। इस्लाम धर्म में जिनका आदम बाबा के रूप में स्मरण किया गया है जापानी जिसे 'रोकशव' कहकर पुकारते हैं। मध्य एशिया में वो 'बाड आल' के नाम से उल्लिखित हैं। फणिक उनके लिए 'रेशेफ' शब्द का प्रयोग करते हैं। पाश्चात्य देशों में भी उनकी ख्याति कही पर कृषि के देवता, कहीं पर भूमि के देवता और कहीं पर 'सूर्यदेव' के रूप में विश्रुत रही है। वे वस्तुतः मानवता के ज्वलंत कीर्तिस्तम्भ हैं।

भगवान् ऋषभदेव का समय वर्तमान इतिहास की काल-गणना परिधि में नहीं आता। वे प्राग्-ऐतिहासिक महापुरुष हैं। उनके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए पुरातत्त्व तथा जैन तथा जैनेतर साहित्य ही प्रबल प्रमाण है। उन्हीं के प्रकाश में अगले पृष्ठों में चिन्तन किया जा रहा है। सर्वप्रथम जैन साहित्य में जहाँ-जहाँ पर ऋषभदेव का उल्लेख प्राप्त होता है उस पर अनुशीलन किया जा रहा है।

✻ आगम साहित्य में ऋषभदेव :

१. सूत्रकृतांगसूत्र

आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने आचारांग व सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध को भगवान् महावीर की मूलवाणी के रूप में स्वीकार किया है। आचारांग में भगवान् ऋषभदेव के सम्बन्ध में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। सूत्रकृतांग का द्वितीय अध्ययन 'वेयालिय' है। इस अध्ययन के सम्बन्ध में यद्यपि मूल आगम

में ऐसा कोई संकेत नहीं है, कि यह अध्ययन भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को कहा था, तथापि आवश्यकचूर्णि[१], आवश्यकहारिभद्रीयावृत्ति[२] एवं आवश्यकमलयगिरिवृत्ति[३] तथा सूत्र-कृतांगचूर्णि आदि ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से यह वर्णन है, कि भगवान् ऋषभदेव ने प्रस्तुत अध्ययन अपने अट्ठानवें पुत्रों को कहा, जिससे उन्हें सम्बोध प्राप्त हुआ। वैतालिक का अर्थ है जगाने वाला।[४] यह अध्ययन अनन्तकाल से सोई हुई आत्मा को जगाने वाला है। जैसा नाम है वैसा ही गुण इस अध्ययन में रहा है। आज भी इस अध्ययन को पढ़कर साधक आनन्द विभोर हो जाता है और उसकी आत्मा जाग जाती है।

भगवान् ने कहा- पुत्रो ! आत्महित का अवसर कठिनता से प्राप्त होता है।[५] भविष्य में तुम्हें कष्ट न भोगना पड़े अतः अभी से अपने विषय-वासना से दूर रखकर अनुशासित बनो।[६] जीवन-सूत्र टूट जाने के पश्चात् पुनः नहीं जुड़ पाता।[७] एक ही झपाटे में बाज जैसे बटेर को मार डालता है वैसे ही आयु क्षीण होने पर मृत्यु भी जीवन को हर लेती है।[८] जो दूसरों का परिभव अर्थात् तिरस्कार करता है वह संसार वन में दीर्घकाल तक भटकता रहता है।[९] साधक के लिए वन्दन और पूजन एक बहुत बड़ी दलदल के सदृश है।[१०] भले ही नग्न रहे, मास-मास का अनशन करे और शरीर को कृश एवं क्षीण कर डाले किन्तु जिसके अन्तर में दम्भ रहता है वह जन्म-मरण के अनन्त चक्र में भटकता ही रहता है।[११] जो क्षण वर्तमान में उपस्थित है वही महत्वपूर्ण है अतः उसे सफल बनाना चाहिए।[१२] समभाव उसी को रह सकता है जो अपने को हर किसी भय से मुक्त रखता है।[१३] पुत्रो ! अभी इस जीवन को समझो। क्यों नहीं समझ रहे हो, मरने के बाद परलोक में सम्बोधि का मिलना बहुत ही दुर्लभ है। जैसे बीती रातें फिर लौटकर नहीं आतीं इसी प्रकार मनुष्य का गुजरा हुआ जीवन फिर हाथ नहीं आता।[१४] मरने के पश्चात् सद्गति सुलभ नहीं है।[१५] अतः जो कुछ भी सत्कर्म करना है, यहीं करो। आत्मा अपने स्वयं के कर्मों से ही बन्धन में पड़ता है। कृतकर्मों के फल भोगे बिना मुक्ति नहीं है।[१६] मुमुक्षु तपस्वी अपने कृत-कर्मो का बहुत शीघ्र ही अपनयन कर देता है, जैसे की पक्षी अपने पंखों को फड़फड़ा कर उन पर लगी धूल को झाड़ देता है।[१७] मन में रहे हुए विकारों के सूक्ष्म शल्य को निकालना कभी-कभी बहुत ही कठिन हो जाता है।[१८] बुद्धिमान को कभी किसी से कलह- झगड़ा नहीं करना चाहिए। कलह से बहुत बड़ी हानि होती है।

---

१ एवं वेयालियं अज्झयणं भासंति 'संबुज्झह किं न बुज्झह' एवं अट्ठाणउईवित्तेहिं अट्ठाणउई कुमार पव्वइयत्ति। आवश्यकचुर्णि, पृ. २१० पूर्वभाग, प्रकाशक — ऋषभदेव केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् १९२८।

२ आवश्यकहारिभद्रीयावृत्ति, प्रथम विभाग, पृ. १५२, प्रकाशक—आगमोदय समिति, सन् १९१६।

३ आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, पूर्वभाग, पृ. २३१, प्रकाशक—आगमोदय समिति, सन् १९२८।

४ वैतालिका बोधकराः। -अमरकोश, काण्ड २, वर्ग ९ श्लोक ९७।

५ सूत्रकृतांग १।२।२।३०

६ वही १।२।३।७

७ सूत्रकृतांग १।२।३।१०

८ वही १।२।१।२

९ वही १।२।२।१

१० वही १।२।२।११

११ वही १।२।१।९

१२ वही १।२।३।१९

१३ वही १।२।२।१७

१४ संबुज्झह किं न बुज्झह? संबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हूवणमंति राइयो, नो सुलभं पुणरावि जीवियं।। -सूत्र. १।२।१।१

१५ सूत्र. १।२।१।३

१६ वही १।२।१।४

१७ वही १।२।१।१५

१८ वही १।२।२।११

सूत्रकृतांगनिर्युक्ति[१९] में कहा है कि भगवान् के प्रेरणाप्रद उद्बोधन से प्रबुद्ध हुए अठानवें पुत्र महाप्रभु ऋषभ के चरणों में दीक्षित हो गये। जिनत्व की साधना के, अमृत-पथ के यात्री हो गये। उनका जीवन बदल गया और वे आत्म-राज्य के राजा हो गये।

२. स्थानांगसूत्र

इस सूत्र की रचना कोश शैली में की गई है। इनमें संख्याक्रम से जीव, पुद्गल आदि की स्थापना होने से इसका नाम स्थान है। बौद्धों का अंगुत्तरनिकाय भी इसी प्रकार की शैली में ग्रथित हुआ है। इस आगम में एक से दस स्थानों तक का वर्णन है। यद्यपि इसमें भगवान् ऋषभदेव का क्रमबद्ध वर्णन नहीं मिलता है, तथापि यत्र-तत्र उनका उल्लेख प्राप्त होता है और उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का भी पता चलता है। जैसे—

अन्तक्रियाओं का वर्णन करते हुए भरत चक्रवर्ती व मरूदेवी माता का दृष्टान्त के रूप में नामोल्लेख किया है। भरत चक्रवर्ती लघुकर्मा, प्रशस्त मन-वचन-काया वाले, दुःखजनक कर्म का क्षय करने वाले, बाह्य व आभ्यन्तर जन्य पीड़ा से रहित, चिरकालिक प्रव्रज्या रूप करण द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। चौथी अन्तक्रिया में मरूदेवी माता का दृष्टान्त दिया गया है, वे लघुकर्मा एवं अल्पपर्याय से परीषह-उपसर्गों से रहित होकर सिद्ध, बुद्ध हुई।[२०]

चतुर्थ स्थान के तृतीय उद्देशक में भरत नरेश को 'उदितोदित' कहा गया है।[२१]

प्रथम एवं अन्तिम तीर्थङ्करों के मार्ग पांच कारणों से दुर्गम बताये हैं— कठिनाई से कहा जाने वाला, दुर्विभाज्य- वस्तुत्व को विभागशः संस्थापन करना दुःशक्य है, दुर्दर्श-कठिनाई से दिखाया जाने वाला, दुस्तितिक्ष अर्थात् कठिनाई से सहा जाने वाला, दुरनुचर- कठिनाई से आचरण किया जाने वाला।

पञ्चम स्थान के द्वितीय उद्देशक में कौशल देशोत्पन्न ऋषभदेव भगवान्, चक्रवर्ती सम्राट् भरत, बाहुबली, एवं सुन्दरी की ऊँचाई पांचसौ धनुष की कही गई है।

षष्ठम स्थान में चतुर्थ कुलकर अभिचन्द्र की ऊँचाई छहसौ धनुष और सम्राट भरत का राज्य-काल लक्ष पूर्व तक का वर्णित किया है।

सप्तम स्थान में वर्तमान अवसर्पिणी के सात कुलकर-विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान, अभिचन्द्र, प्रसेनजित्, मरूदेव, नाभि तथा इनकी भार्याओं के नाम-चन्द्रयशा, चन्द्रकान्ता, सुरूपा, प्रतिरूपा, चक्षुकान्ता श्रीकान्ता एवं मरुदेवी का उल्लेख किया है। विमलवाहन कुलकर के समय उपभोग्य सप्त कल्पवृक्ष थे- मत्तांगक, भृङ्ग, चित्रांग, चित्ररस, मण्यङ्ग, अनग्न आदि।

सम्राट भरत के पश्चात् आठ राजा सिद्ध-बुद्ध हुए-आदित्ययश, महायश, अतिबल, महाबल, तेजोवीर्य, कीर्तिवीर्य, दण्डवीर्य और जलवीर्य।

नवम स्थान में विमलवाहन कुलकर की नौ सौ धनुष्य की ऊँचाई का वर्णन है तथा श्री ऋषभदेव के चतुर्विध संघ की स्थापना अवसर्पिणी काल के नौ कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण काल व्यतीत होने पर हुई, उसका वर्णन है।

---

१९ कामं तु सासणमिणं कहिंय अट्ठावयं मि उसभेणं।
अट्ठाणउतिसुयाणं सोईणं ते वि पठवइया।। -सूत्रकृतांगनिर्युक्ति ३९
१ उत्तराध्ययन ३६।५३। २ आवश्यकनिर्युक्ति गा. ३११। ३ देखिए- लेखक का 'जैन आगमों में आश्चर्य' लेख।

२० स्थानांगसूत्र, ४ स्थान, पं. ३० सू. २३५, पृ.-१३३-मुनि कन्हैयालाल सम्पादित, प्रकाशक- आगम अनुयोग, सांडेराव (राज.) सन् १९७२

२१ वही, ४ स्थान, उ. ३

दशम स्थान में दस आश्चर्यकारी बातों का वर्णन है, जो अनन्तकाल के बाद प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में हुई थीं । इसमें एक आश्चर्य भगवान् ऋषभदेव के समय का माना जाता है, कि भगवान् ऋषभदेव के तीर्थ में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ मुनि एक साथ, एक ही समय में सिद्ध हुए थे।

यहाँ पर इसलिए आश्चर्य माना गया है कि भगवान् ऋषभ के समय उत्कृष्ट अवगाहना थी। उत्कृष्ट अवगाहना में केवल एक साथ दो ही व्यक्ति सिद्ध हो सकते हैं।[२२] प्रस्तुत सूत्र में एक सौ आठ व्यक्ति उत्कृष्ट अवगाहना में मुक्त हुए, अतः आश्चर्य है।

आवश्यक निर्युक्ति में ऋषभदेव के दस हजार व्यक्तियों के साथ सिद्ध होने का उल्लेख है।[२३] उसका तात्पर्य यही है दस हजार अनगारों के एक ही नक्षत्र में सिद्ध होने के कारण उनका ऋषभदेव के साथ सिद्ध होना बताया है। एक समय में नहीं।[२४]

३. समवायांगसूत्र[२५]

इसकी संकलना भी स्थानांग के समान ही हुई है। इसके अठारहवें समवाय में ब्राह्मीलिपि के लेखन के अठारह प्रकार बताये हैं। तेईसवें समवाय में ऋषभदेव को पूर्वभव में चौदह पूर्व के ज्ञाता तथा चक्रवर्ती सम्राट कहा है। चौबीसवें समवाय में ऋषभदेव का प्रथम देवाधिदेव के रूप में उल्लेख है। पच्चीसवें समवाय में प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्करों के पञ्च-महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं का निरूपण है।[२६]

छियालिसवें समवाय में ब्राह्मीलिपि के छियालीस मातृकाक्षरों का उल्लेख है। त्रेसठवें समवाय में भगवान् ऋषभदेव का ६३ लाख पूर्व तक राज्य-पद भोगने का, सतहत्तरवें समवाय में भरत चक्रवर्ती के ७७ लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहने का, तिरासीवें समवाय में भगवान् ऋषभदेव एवं भरत के ८३ लाख पूर्व तक गृहस्थावस्था के काल का तथा चौरासीवें समवाय में ऋषभदेव, भरत, बाहुबली, ब्राह्मी एवं सुन्दरी की सर्वायु ८४ लाख पूर्व की स्थितिवर्णित की गई है। भगवान् के चौरासी हजार श्रमण थे।

नवासीवें समवाय में अरिहंत कौशलिक श्री ऋषभदेव इस अवसर्पिणी के तृतीय सुषम-दुषम आरे के अन्तिम भाग में नवासी पक्ष शेष रहने पर निर्वाण को प्राप्त हुए; इसका उल्लेख है। तथा भगवान् ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर का अव्यवहित अन्तर एक कोटाकोटि सागरोपम का वर्णित है। इनके अतिरिक्त उनके पूर्वभव का नाम, शिविका नाम, माता-पिता के नाम, सर्वप्रथम आहार प्रदाता का नाम, प्रथम भिक्षा एवं संवत्सर में प्राप्त हुई—इसका उल्लेख, जिस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ वह (न्यग्रोध) वृक्ष की (तीन कोस) ऊँचाई, प्रथम शिष्य, प्रथम शिष्या, भरत चक्रवर्ती और उनके माता-पिता तथा स्त्रीरत्न का नामोल्लेख इस अंग में किया गया है।

४. भगवतीसूत्र[२७]

भगवतीसूत्र आगम-साहित्य में सर्वाधिक विशालकाय ग्रन्थरत्न है। इसमें अनेक विषयों पर तलस्पर्शी चर्चाएँ की गई हैं। भगवान् ऋषभदेव से सम्बन्धित वर्णन इसमें यत्र-तत्र ही देखने को मिलता है। सर्वप्रथम इसमें मंगलाचरण के रूप में 'ब्राह्मीलिपि' को नमस्कार किया गया है।

---

२२ उत्तराध्ययन ३६। ५३

२३ आवश्यक निर्युक्ति गा. ३११

२४ देखिए- लेखक का 'जैन आगमों में आश्चर्य' लेख।

२५ ठाणांग, समवायांगः सम्पादक- दलसुख मालवणिया, अहमदाबाद, सन् १९५५।

२६ समवायांगसूत्र, २५ वां समवाय।

२७ भगवतीसूत्र २०।८।६९, अंगसुत्ताणि भाग २, भगवई- जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.) ।

भगवती सूत्र में प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् का पञ्च महाव्रत युक्त तथा प्रतिक्रमण सहित धर्म के उपदेश का कथन किया गया है। भावी तीर्थङ्करों में अन्तिम तीर्थङ्कर का तीर्थ कौशलिक भगवान् ऋषभदेव अरिहन्त के जिन पर्याय जितना (हजार वर्ष न्यून लाख पूर्व) वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त भगवती सूत्र में भगवान् ऋषभदेव का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

५. प्रज्ञापनासूत्र[२८]

प्रज्ञापना जैन आगम-साहित्य में चतुर्थ उपांग है। इसमें भगवान् ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को जिस लिपि-विद्या का ज्ञान कराया था, उन अठारह लिपियों का निर्देश प्रस्तुत आगम में किया गया है।

लिपियों के सम्बन्ध में हमने परिशिष्ट में विस्तार से विवेचन किया है।

६. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्र[२९]

इसमें भगवान् ऋषभदेव का वर्णन सर्वप्रथम विस्तृत रूप से चित्रिति किया गया है। कुलकरों का उल्लेख करते हुए इसमें पन्द्रह कुलकरों के नाम निर्देश किये हैं— (१)सुमति, (२) प्रतिश्रुति, (३) सीमंकर, (४) सीमंधर, (५) खेमंकर, (६) खेमंधर, (७) विमलवाहन, (८)चक्षुवंत, (९) यशःवंत, (१०) अभिचन्द्र, (११) चन्द्राभ, (१२) प्रसेनजित, (१३) मरुदेव, (१४) नाभि, (१५) ऋषभ।

उक्त पन्द्रह कुलकरों के समय प्रचलित दंडनीति तीन प्रकार की थी— प्रथम पाँच कुलकरों के समय 'ह' कार दण्डनीति, द्वितीय पाँच कुलकरों के समय 'मा' कार दंडनीति एवं अन्तिम पाँच कुलकरों के समय 'धिक्' कार दंडनीति प्रचलित थी।

भगवान् ऋषभदेव से सम्बन्धित उनके कुमारकाल, राज्यकाल, बहत्तर कलाओं एवं चौंसठ कलाओं का उपदेश, भरत का राज्याभिषेक, भगवान् का प्रव्रज्या-ग्रहण, केशलोंच, दीक्षाकालीन तप, उनके साथ दीक्षित होने वालों की संख्या, एक वर्ष पर्यन्त देवदूष्य धारण, उपसर्ग, संयमी जीवन का वर्णन, संयमी जीवन की उपमाएँ, केवलज्ञान का काल, स्थान, उपदेश, गण, गणधर एवं आध्यात्मिक परिवार का वर्णन है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में उनके पाँच प्रधान जीवन-प्रसंग हुए और निर्वाण अभिजित् में हुआ। संहनन, संस्थान, ऊंचाई, प्रव्रज्याकाल, छद्मस्थ जीवन, केवली जीवन आदि का उल्लेख है। निर्वाण का दिन (माघकृष्णा त्रयोदशी), निर्वाण स्थान, भगवान् के साथ निर्वाण होने वाले मुनि, निर्वाण काल का तप, निर्वाणोत्सव आदि विषयों पर इस सूत्र के द्वितीय वक्षस्कार में पर्याप्त उसके पश्चात् तृतीय वक्षस्कार में भरत चक्रवर्ती का एवं भारतवर्ष नामकरण के हेतु का सविस्तृत वर्णन है।

७. उत्तराध्ययनसूत्र

उत्तराध्ययन भगवान् महावीर के अन्तिम प्रवचनों का संग्रह है। इसमें भगवान् ऋषभदेव के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा नहीं है, किन्तु अठारहवें अध्ययन में सम्राट भरत का उल्लेख है, जिन्होंने भारतवर्ष के शासन का एवं काम-भोगों का परित्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की थी।[३०]

प्रस्तुत आगम के तेवीसवें अध्ययन में 'केशी-गौतमीय' की ऐतीहासिक चर्चा है उसमें गणधर-गौतम ने केशी श्रमण से कहा-प्रथम तीर्थङ्कर के साधु ऋजु और जड़ होते हैं, अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु वक्र और जड़ होते हैं, मध्य के बाईस तीर्थङ्करों के साधु ऋजु और प्राज्ञ होते हैं। प्रथम तीर्थङ्कर के मुनियों द्वारा

---

२८ पण्णवणासुत्तंः मुनि पुण्यविजयजी द्वरा सम्पादित, महावीर जैन विद्यालय, बम्बई-३६, सन् १९७२।

२९ (क) आचार्यश्री अमोलकऋषिजी महाराज, हैदराबाद वी. सं. २४४६।
(ख) शान्तिचन्द्र विहित वृत्ति सहित- देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, बम्बई; सन् १९२०, धनपतसिंह, कलकत्ता, सन् १८८५।

३० उत्तराध्ययनसूत्र, १८ अध्ययन, गाथा ३४।

आचार को यथावत् ग्रहण कर लेना कठिन है, अन्तिम तीर्थङ्कर के मुनियों द्वारा कल्प को यथावत ग्रहण करना व उसका पालन करना कठिन है, परन्तु मध्य के तीर्थङ्करों के मुनियों द्वारा कल्प को यथावत् ग्रहण करना एवं उसका पालन करना सरल है। यहाँ पर भगवान् ऋषभदेव के श्रमणों के स्वभाव का चित्रण किया गया है, किन्तु स्वयं ऋषभदेव का नहीं ।[३१]

प्रस्तुत सूत्र के पच्चीसवें अध्ययन में जयघोष मुनि ने विजयघोष ब्राह्मण से कहा—'वेदों का मुख अग्निहोत्र है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी है, नक्षत्रों का मुख चन्द्रमा है एवं धर्मों का मुख काश्यप ऋषभदेव हैं।[३२]

जिस प्रकार चन्द्रमा के सम्मुख ग्रह आदि हाथ जोड़े हुए वन्दना-नमस्कार करते हुए और विनीत भाव से मन का हरण करते हुए रहते हैं उसी प्रकार भगवान् ऋषभदेव के सम्मुख सब लोग रहते हैं।[३३]

८. कल्पसूत्र[३४]

कल्पसूत्र दशाश्रुतस्कन्ध का अष्टम अध्ययन है, इसमें चौबीस तीर्थङ्करों का संक्षेप में परिचय दिया गया है। भगवान् ऋषभदेव के पञ्चकल्याणक का उल्लेख किया है, उसके पश्चात् उनके माता-पिता, जन्म, उनके पाँच नाम और दीक्षा-ग्रहण करने का उल्लेख है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि ऋषभदेव ने दीक्षा के समय चारमुष्टि केशलोंच किया था जिसका इसमें उल्लेख है। अन्य तीर्थङ्करों के समान पञ्च-मुष्टि केशलोंच नहीं किया। दीक्षा के एक हजार वर्ष पश्चात् उन्हें केवलज्ञान हुआ। प्रस्तुत सूत्र में उनकी शिष्य-सम्पदा का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

कल्पसूत्र के मूल में ऋषभदेव के पूर्वभवों का उल्लेख नहीं है, किन्तु कल्पसूत्र की वृत्तियों में उनके पूर्वभव व अन्य जीवन-प्रसंगों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

* निर्युक्ति साहित्य में ऋषभदेव :

मूल ग्रन्थों पर व्याख्यात्मक साहित्य लिखने की परम्परा बहुत ही प्राचीन है। समवायांग, स्थानांग और नन्दी में जहाँ पर द्वादशांगी का परिचय प्रदान किया गया है वहाँ पर प्रत्येक सूत्र के सम्बन्ध में 'संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ' यह उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि निर्युक्तियों की परम्परा आगम काल में भी थी। उन्हीं निर्युक्तियों के आधार पर बाद में भी आचार्य रचना करते रहे होगें और उसे अन्तिम रूप द्वितीय भद्रबाहु ने प्रदान किया। जैसे वैदिक परम्परा में पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करने के लिये यास्क महर्षि ने निघण्टुभाष्य रूप निरुक्त लिखा वैसे ही जैन आगमों के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करने के लिए आचार्य भद्रबाहु ने प्राकृत पद्य में निर्युक्तियों की रचना की। शैली सूत्रात्मक एवं पद्यमय है।

१. आवश्यक निर्युक्ति[३५]

आचार्य द्वितीय भद्रबाहु ने दस निर्युक्तियों की रचना की है, उनमें आवश्यक निर्युक्ति का प्रथम स्थान है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर विस्तृत और व्यवस्थित चर्चाएँ की गई हैं। प्राचीन जैन इतिहास को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का यह सर्वप्रथम एवं प्रामाणिक प्रयत्न हुआ है। इसमें भगवान् महावीर

---

३१ उत्तराध्ययनसूत्र, २३ अध्ययन, गाथा २६,२७।

३२ .....धम्माणं कासवो मुहं।। —उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन २५, गा. १६

३३ वही, अ. २५, गा. १७।

३४ कल्पसूत्रः श्री अमर जैन आगम शोध-संस्थान, गढ़ सिवाना, सम्पादक - श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री, सन् १९६८।

३५ आवश्यक निर्युक्ति, पूर्वभाग, प्रकाशक- श्री आगमोदय समिति, सन् १९२८।

के पूर्वभवों का वर्णन करते हुए भगवान् ऋषभदेव के जीवन पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इतना ही नहीं, भगवान् के जन्म से पूर्व होने वाले कुलकरों का वर्णन, उनकी उत्पत्ति का हेतु आदि विषयों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। श्री ऋषभदेव से सम्बन्धित निम्न विषयों का निर्देश प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है-

(१) ऋषभदेव के द्वादश पूर्वभवों का कथन।
(२) ऋषभदेव का जन्म, जन्म-महोत्सव।
(३) वंशस्थापना, नामकरण।
(४) अकाल मृत्यु।
(५) श्री ऋषभदेव का कन्याद्वय के साथ पाणिग्रहण।
(६) संतानोत्पत्ति।
(७) राज्याभिषेक।
(८) खाद्य-समस्या का समाधान।
(९) शिल्पादि कलाओं का परिज्ञान।
(१०) भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा।
(११) आहार-दान की अनभिज्ञता।
(१२) नमि-विनमि को विद्याधर ऋद्धि।
(१३) चार हजार साधुओं का तापस वेष ग्रहण।
(१४) श्रेयांस के द्वारा इक्षुरस का दान।
(१५) श्रेयांस के पूर्वभव।
(१६) केवलज्ञान।
(१७) भरत की दिग्विजय।
(१८) सुन्दरी की प्रव्रज्या।
(१९) भारत-बाहुबली युद्ध।
(२०) मरीचि का नवीन काल्पनिक वेष-ग्रहण।
(२१) वेदोत्पत्ति।
(२२) श्री ऋषभदेव का परिनिर्वाण।
(२३) भरत का केवलज्ञान एवं निर्वाण।

ऋषभदेव के पूर्वभवों का वर्णन सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में हुआ है। कल्पसूत्र की टीकाओं में जो वर्णन हुआ है, उसका भी मूल स्रोत यही है।

ऋषभदेव के जीवन की घटनाओं के साथ ही उस युग के आहार, शिल्प, कर्म, ममता, विभूषण, लेख, गणित, रूप, लक्षण, मानदण्ड, प्रोतन-पोत व्यवहार, नीति, युद्ध, इषुशास्त्र, उपासना, चिकित्सा, अर्थशास्त्र, बंध, घात, ताडन, यज्ञ, उत्सव, समवाय, मंगल, कौतुक, वस्त्र, गंध, माल्य, अलंकार, चूला, उपनयन, विवाह, दत्ति, मृतपूजना, ध्यापना, स्तूप, शब्द, खेलायन, पृच्छना आदि चालीस विषयों की ओर भी संकेत किया है।[३६] जिसके आद्य प्रवर्तक श्री ऋषभदेव हैं।

३६ आवश्यक निर्युक्ति गा. १८५-२०६।

* भाष्य साहित्य में ऋषभदेव :

१. विशेषावश्यकभाष्य[३७]

निर्युक्तियों के पश्चात् भाष्य साहित्य का निर्माण किया गया। निर्युक्तियों की तरह भाष्य भी प्राकृत भाषा में हैं। भाष्य साहित्य में विशेषावश्यकभाष्य का अत्याधिक महत्त्व है। यह जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। ज्ञानवाद, प्रमाणशास्त्र, आचार, नीति, स्याद्वाद, नयवाद, कर्मवाद प्रभृति सभी विषयों पर विस्तार से विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ की यह महान् विशेषता है कि जैनतत्त्व का विश्लेषण, जैन दृष्टि से ही न होकर अन्य दार्शनिक मान्यताओं की तुलना के साथ किया गया है। आगम साहित्य की प्रायः सभी मान्यताएँ तर्क रूप में इसमें प्रस्तुत की गई हैं। इसमें भगवान् ऋषभ का संक्षेप में सम्पूर्ण जीवन- वृत्त आया है। जो आवश्यक निर्युक्ति में गाथाएँ हैं, उन्हीं का इसमें प्रयोग है। कुछ गाथाएँ नूतन भी हैं। इसमें मरीचि के भव, कुलकरों का वर्णन, ऋषभदेव के चरित्र में भावी तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती आदि का निरूपण किया गया है।

* चूर्णि साहित्य में ऋषभदेव :

१. आवश्यक चूर्णि[३८]

आगम की व्याख्याओं में सर्वप्रथम निर्युक्तियाँ, उसके पश्चात् भाष्य और उसके पश्चात् चूर्णि साहित्य रचा गया है। आवश्यक चूर्णि, चूर्णि साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आवश्यक निर्युक्ति में जिन प्रसंगों का संक्षेप में वर्णन किया गया है उन्हीं प्रसंगों पर चूर्णि में विस्तार से वर्णन है। प्रस्तुत चूर्णि में भगवान् ऋषभदेव से सम्बन्ध रखने वाली निम्न घटनाओं का निर्देश मिलता है–

(१) प्रथम कुलकर विमलवाहन का पूर्वभव।
(२) अन्य छह कुलकरों का वर्णन एवं दण्डनीति।
(३) ऋषभदेव के सात पूर्वभवों का उल्लेख।
(४) श्री ऋषभदेव का जन्म, जन्मोत्सव।
(५) नामकरण, वंशस्थापन।
(६) अकाल मृत्यु।
(७) ऋषभदेव का सुमंगला व सुनन्दा के साथ विवाह।
(८) सन्तानोत्पत्ति।
(९) राज्याभिषेक, शिल्पादि कर्मों की शिक्षा।
(१०) ऋषभदेव का शिष्य परिवार।
(११) दीक्षा (यह जो क्रम विपर्यय हुआ है वह सभी तीर्थङ्करों का सामूहिक वर्णन होने से हुआ है।)
(१२) नमि-विनमि को विद्याधर ऋद्धि।
(१३) भिक्षा के अभाव में चार हजार श्रमणों का पथभ्रष्ट होना।
(१४) श्रेयांसादि के स्वप्न एवं भगवान् का पारणा।
(१५) श्रेयांस के पूर्वभव।

---

३७ श्री जिनभद्रगणी विरचित, विशेषावश्यक भाष्य स्वोपज्ञवृत्तिसहित, द्वितीय भाग, सम्पादक– पंडित दलसुख मालवणिया, प्रकाशक- लालभाई दलपतभाई, भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद, सन् १९६८।

३८ आवश्यक चूर्णि, ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् १९२८।

(१६) भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान।
(१७) माता मरूदेवी को केवलज्ञान और मोक्ष।
(१८) संघ स्थापना।
(१९) भरत को दिग्विजय।
(२०) सुन्दरी की प्रव्रज्या।
(२१) भरत-बाहुबली के दृष्टियुद्ध, बाहुयुद्ध एवं मुष्टियुद्ध का वर्णन।
(२२) बाहुबली को वैराग्य, दीक्षा और केवलज्ञान।
(२३) मरीचि द्वारा स्वेच्छानुसार परिव्राजक वेष (लिंग) की स्थापना।
(२४) ब्राह्मणोत्पत्ति।
(२५) भगवान् ऋषभदेव का परिनिर्वाण।
(२६) सम्राट भरत को आदर्श भवन में केवलज्ञान।

* प्राकृत काव्य साहित्य में ऋषभदेव :

१. वसुदेव-हिंडी[३९]

वसुदेव-हिंडी का भारतीय कथा साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व के कथा साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैसे गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में नरवाहनदत्त की कथा लिखी वैसे ही संघदासगणी ने प्राकृत भाषा में वसुदेव के भ्रमण की कथा लिखी। यह कथा (प्रथम खण्ड) जैन साहित्य के उपलब्ध सर्व कथा-ग्रन्थों में प्राचीनतम है। इसकी भाषा आर्ष जैन महाराष्ट्री प्राकृत है। मुख्यतः यह गद्यमय है, तथापि कहीं-कहीं पद्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है। इसमें श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के अनेक वर्षों के परिभ्रमण और उनका अनेक कन्याओं के साथ विवाह का वर्णन किया गया है। जिस-जिस कन्या के साथ विवाह हुआ उस-उस के नाम से मुख्य कथा के विभागों को 'लंभक' कहा गया है।

वसुदेव-हिण्डी के चतुर्थ 'नीलयशा लंभक' एवं 'सोमश्री' लंभक में श्री ऋषभदेव का चरित्र चित्रण किया गया है। उसमें निम्न घटनाओं का समावेश है-

(१) मरूदेवी का स्वप्न-दर्शन।
(२) ऋषभदेव का जन्म।
(३) देवेन्द्रों और दिशाकुमारियों द्वारा भगवान् का जन्मोत्सव।
(४) ऋषभदेव का राज्याभिषेक।
(५) ऋषभदेव की दीक्षा।
(६) नमि-विनमि को विद्याधर ऋद्धि की प्राप्ति।
(७) ऋषभदेव का श्रेयांस के यहाँ पारणा।
(८) सोमप्रभ का श्रेयांस को प्रश्न पूछना।
(९) श्रेयांस का प्रत्युत्तर में ऋषभदेव के पूर्वभव का वृत्तान्त।
(१०) महाबल और स्वयंबुद्ध के पूर्वजों का वृत्तान्त।
(११) निर्नामिका की कथा।
(१२) आर्यदेव की उत्पत्ति।
(१३) श्री ऋषभदेव का निर्वाण।

---

३९ वसुदेवहिण्डी, प्रथम खण्ड, सम्पादक- मुनि पुण्यविजयजी महाराज, श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, ई. सन् १९३१।

(१४) अनार्यवेद की उत्पत्ति।
(१५) बाहुबली एवं भरत का युद्ध।
(१६) बाहुबली की दीक्षा एवं केवलज्ञान।

इस ग्रन्थ में 'जीवानन्द वैद्य' के स्थान पर 'केशव' का उल्लेख हुआ है। ऋषभदेव पूर्वभव में 'केशव' नामक वैद्य पुत्र थे एवं श्रेयांस का जीव पूर्वभव में श्रेष्ठिपुत्र 'अभयघोष' था।[४०]

ऋषभदेव के निर्वाण के प्रसंग में कहा है, कि भगवान् दस हजार साधुओं, निन्यानवें पुत्रों और आठ पौत्रों के साथ एक ही समय में सिद्ध-बुद्ध हुए थे।[४१] जबकि कल्पसूत्र, आवश्यक निर्युक्ति आदि ग्रन्थों में दस हजार साधुओं का ही उल्लेख है।

भरत-बाहुबली के युद्ध-वर्णन में आचार्य ने उत्तमयुद्ध और मध्यमयुद्ध इन दो युद्धों का वर्णन किया है। उसमें दृष्टियुद्ध को उत्तमयुद्ध कहा है और मुष्टियुद्ध को मध्यमयुद्ध बताया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में गंधांग, मायांग, रुक्खमूलिया और कालकेसा आदि विद्याओं का वर्णन है। विषयभोगों को दुःखदायी प्रतिपादन करते हुए कौवे और गीदड़ आदि की लौकिक कथाएँ भी दी हैं।

२. पउमचरियं[४२]

संस्कृत साहित्य में जो स्थान वाल्मीकि रामायण का है, वही स्थान प्राकृत में प्रस्तुत चरित-काव्य का है। इसके रचयिता विमलसूरि हैं। ये आचार्य राहु के प्रशिष्य, विजय के शिष्य और नाइल-कुल के वंशज थे। यद्यपि सूरिजी ने स्वयं इसे पुराण कहा है, फिर भी आधुनिक विद्वान् इसे महाकाव्य मानते हैं। पउपचरियं में जैन-रामायण है। वाल्मीकि रामायण की तरह इसमें अनवरुद्ध कथा प्रवाह है। इसकी शैली उदात्त है।

'पउमचरियं' में राम की कथा इन्द्रभूति और श्रेणिक के संवाद के रूप में कही गई है। कथा के प्रारम्भ में आचार्य ने लोक का वर्णन, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल का निरूपण करते हुए तृतीय आरे के अन्त में कुलकर वंश की उत्पति का संक्षिप्त वर्णन किया है। प्रतिश्रुति कुलकर से लेकर चौदहवें कुलकर नाभि तक के युगानुरूप प्रसिद्ध कार्यों का विवरण भी प्रस्तुत किया है। तदनन्तर तीर्थङ्कर जन्म के सूचक मरुदेवी के चौदह स्वप्न, गर्भ में आने के छह माह पूर्व कुबेर द्वारा हिरण्यवृष्टि, भगवान् का जन्म, इन्द्रों द्वारा मन्दराचल पर्वत पर भगवान् का जन्माभिषेक, भगवान् के समय की तत्कालीन स्थिति एवं ऋषभदेव के द्वारा नवनिर्माण-शिल्पादि की शिक्षा, त्रिवर्ण की स्थापना का वर्णन अति संक्षिप्त रूप से किया गया है। उसके पश्चात् सुमंगला एवं नन्दा से उनका पाणिग्रहण हुआ। संतानोत्पत्ति के पश्चात् नीलाञ्जना नाम की अप्सरा के मनोहारी नृत्य में मृत्यु का दृश्य देखकर ऋषभदेव विरक्त हुए और उन्होंने 'वसंततिलक' उद्यान में चार सहस्र अनुगामियों के साथ 'पंचमुष्टि लोच' कर[४३] संयम ग्रहण किया। भिक्षा न मिलने से छह मास के भीतर चार हजार श्रमण पथ-विचलित हो गये। आकाशवाणी सुनकर वे चार हजार श्रमण वल्कलधारी बनकर वृक्षों से फल, फूल, कन्द आदि का आहार करने लगे। धरणेंन्द्र द्वारा नमि-विनमि

---

४० तत्थ सामी पियामहो सुविहि विज्जपुत्तो केसवो नामं जातो। अहं पुण सेट्ठिपुत्तो अभयघोसो। —वसुदेव-हिंडी, नीलयशा लंभक, पृ १७७

४१ भयव ंच जयगुरु उसभसामी....दसहिं समणसहस्सेहिं....एकगूणपुतसएण अट्ठहि य नत्तुयएहिं सह एगसमयेण निव्वुओ। -वही, सोमश्री लंभक, पृ.१८५

४२ श्री विमलसूरि विरचित, सम्पादक- श्री पुण्यविजयी महाराज, प्रकाशक- प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी- ५, ई. सन् १९६२।

४३ सिद्धाणं नमुक्कारं, काऊण य पञ्चमुट्ठीयं लोयं।
चउहिं सहस्सेहिं समं, पत्तो य जिणो परमदिक्खं।। -पउमचरियं ३१।६३

को उत्तम निवास के हेतु शुद्ध रजत से निर्मित पचास योजन विस्तृत वैताढ्य पर्वत तथा अनेक विद्याओं के दान देने का निरूपण किया गया है।

चतुर्थ उद्देशक में श्रेयांस के दान का, भगवान् के केवलज्ञानोत्पत्ति का उपदेश एवं भरत-बाहुबली के युद्ध का वर्णन है। भरत अपनी पराजय से क्षुभित होकर बाहुबली पर चक्ररत्न फैंकते हैं, परन्तु वह चक्र बाहुबली तक पहुँच कर ज्योंही भरत की ओर मुड़ा तो बाहुबली के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। एक वर्ष तक कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा कर बाहुबली अन्त में तपोबल से केवलज्ञान प्राप्त करते है तथा मोक्ष पद के अधिकारी बनते हैं।

प्रस्तुत उद्देशक में भरत के वैभव का वर्णन करते हुए ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति का हेतु निर्दिष्ट किया गया है। अन्त में भगवान् ऋषभदेव के अष्टापद पर निर्वाण प्राप्त करने का और भरत चक्रवर्ती के राज्य-लक्ष्मी का त्याग कर अव्याबाध पर सुख प्राप्त करने का संक्षिप्त निरूपण किया गया है।

इस काव्य में भगवान् ऋषभदेव के पंचमुष्टि लोच का निरूपण किया गया है।

३. तिलोयपण्णत्ति[४४]

उक्त ग्रन्थ दिगम्बर परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें तीर्थङ्कर आदि के चरित्र-तथ्यों का प्राचीन संकलन प्राकृत भाषा में किया गया है। इसके चौथे महाधिकार में-तीर्थङ्कर किस स्वर्ग से च्यवकर आये, नगरी व माता-पिता का नाम, जन्म तिथि, नक्षत्र, वंश, तीर्थङ्करों का अन्तराल, आयु, कुमारकाल, शरीर की ऊंचाई, वर्ण, राज्यकाल, वैराग्य का निमित्त, चिन्ह, दीक्षातिथि, नक्षत्र, दीक्षा का उद्यान, वृक्ष, प्राथमिक तप, दीक्षा परिवार, पारणा, दान में पञ्चाश्चर्य, छद्मस्थ काल, केवलज्ञान की तिथि, नक्षत्र, स्थान, केवलज्ञान के बाद अन्तरिक्ष हो जाना, केवलज्ञान के समय इन्द्रादि के कार्य, समवसरण का सांगोपांग वर्णन, यक्ष-यक्षिणी, केवलज्ञान गणधर संख्या, ऋषि संख्या, पूर्वधर शिक्षक, अवधिज्ञानी, केवलज्ञानी, विक्रिया ऋद्धिधारी, वादी आदि की संख्या, आर्यिकाओं की संख्या, श्रावक-श्राविकाओं की संख्या, निर्वाणतिथि, नक्षत्र, स्थान का नाम आदि प्रमुख तथ्यों का विधिवत् संग्रह है।

४. चउप्पन्नमहापुरिसचरियं[४५]

महापुरुषों के चरित्र का वर्णन करने वाले उपलब्ध ग्रन्थों में उक्त ग्रन्थ सर्वप्रथम माना जाता है। यह ग्रन्थ आचार्य शीलाङ्क द्वारा रचित है इसमें वर्तमान अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव और नौ वासुदेव का चरित्र-चित्रण किया गया है। जैनागम में ऐसे महापुरुषों को 'उत्तमपुरुष' या 'शलाकापुरुष' भी कहते हैं। श्रीमज्जिनसेनाचार्य तथा श्री हेमचन्द्राचार्य ने शलाकापुरुषों की संख्या त्रेसठ दी है। नौ वासुदेवों के शत्रु नौ प्रतिवासुदेवों की संख्या चौपन में जोड़ने से त्रेसठ की संख्या बनती है। श्री भद्रेश्वरसूरि ने अपनी कहावली में नौ नारदों की संख्या को जोड़कर शलाकापुरुषों की संख्या बहत्तर दी है।[४६]

शीलांकीय प्रस्तुत ग्रन्थ प्राकृत भाषा में निबद्ध है। मात्र 'विबुधानन्द नाटक' संस्कृत में है, उसमें भी कहीं-कहीं अपभ्रंश सुभाषित आते हैं। संपूर्ण ग्रन्थ गद्य-पद्यमय होने पर भी कहीं-कहीं पद्यगन्धी गद्य भी प्रतीत होता है।

---

४४ यतिवृषभाचार्य विरचित, प्रकाशकः जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, भाग १ सन् १९४३, भाग २ सन् १९५१।

४५ आचार्य शीलाङ्क विरचित, सम्पादक- पंडित अमृतलाल मोहनलाल भोजक, प्रकाशक- प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी ५, सन् १९१६।

४६ चउवीस जिणा, वारस चक्की, णव पडिहरी, णव सरामा। हरिणो, चक्किहरिसु य केसु णव नारया होंति। उड्ढगइं चिय जिण राम-णारया जंतऽहोगइं चेय। सणियाणा चिय पण्डिहरि- हरिणो दुहुवो वि चक्कि त्ति। न य सम्मत्त सलायारहिया नियमेणिमेजओ तेण। होंति सलाया पुरिसा बहत्तरी....। - कहावली (अमुद्रित)

इसमें आचार्य ने सर्वप्रथम मंगलाचरण कर लोक-अलोक व काल का वर्णन किया है। इसके पश्चात् सप्त कुलकर, 'ह' कारादि नीतियाँ, अल्पानुभाव वाले कल्पवृक्षों का वर्णन कर श्री ऋषभदेव के दस पूर्वभवों का वर्णन किया है। ऋषभदेव के चतुर्थ भव में महाबल को प्रतिबोधित करने के लिये आचार्य ने मंत्री द्वारा 'विबुधानंद नाटक' की रचना करवाकर अवान्तर कथा को भी सम्मिलित किया है। भगवान् ऋषभदेव के जन्म के पश्चात् आचार्य ने भगवान् से सम्बन्धित निम्न बातों का अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है-

(१) इक्ष्वाकु वंश की स्थापना।
(२) ऋषभस्वामी का विवाह और राज्याभिषेक।
(३) विनीता नगरी की स्थापना।
(४) भरत-बाहुबली आदि पुत्र व ब्राह्मी-सुन्दरी कन्याद्वय का जन्म।
(५) लिपि-कला-लक्षण शास्त्रादि का प्रादुर्भाव।
(६) वर्ण व्यवस्था।
(७) ऋषभदेव की दीक्षा, पञ्चमुष्टि लोच।
(८) एक संवत्सर के पश्चात् भगवान् का पारणा।
(९) बाहुबली कृत धर्मचक्र।
(१०) केवलज्ञान की उत्पत्ति।
(११) मरुदेवी माता को केवलज्ञान और निर्वाण।
(१२) गणधर स्थापना और ब्राह्मी प्रव्रज्या।
(१३) भरत की विजय-यात्रा, नव निधियाँ।
(१४) भरत-बाहुबली युद्ध।
(१५) उत्तम, मध्यम और जघन्य-युद्ध के तीन रूप।
(१६) पराजित भरत द्वारा चक्ररत्न फैंकना।
(१७) बाहुबली की दीक्षा और केवलज्ञान।
(१८) मरीचि का स्वमति अनुसार लिंग स्थापन।
(१९) ऋषभदेव का निर्वाण।
(२०) भरत का केवलज्ञान और निर्वाण।

इस ग्रन्थ में प्रमुख ध्यान देने की बात है -भगवान् का पञ्चमुष्टि केशलुंचन[४७]; जबकि अन्य ग्रन्थों में चतुर्मुष्टि केशलुंचन का उल्लेख है। और दूसरा 'विबुधानन्द नाटक' की रचना। अन्य श्वेताम्बर-ग्रन्थों में कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं है।

युद्ध का वर्णन करते हुए तीन तरह के युद्ध प्रतिपादित किये हैं -दो प्रतिस्पर्द्धी राजा सैन्य का संहार रोकने के लिये परस्पर दृष्टियुद्ध अथवा मल्लयुद्ध करते थे। इन दो प्रकारों में से प्रथम उत्तम और द्वितीय मध्यम युद्ध कहलाता है। रणभूमि में दो प्रतिस्पर्धी राजाओं के सैन्य विविध आयुधों से जो युद्ध करते हैं वह अधम-कोटी का है।

५. आदिनाहचरियं

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि के शिष्य वर्धमानाचार्य हैं। इस रचना पर 'चउप्पन्नमहापुरिसचरियं' का प्रभाव है । उक्त ग्रन्थ की एक गाथा संख्या ४५ के रूप में इसमें ज्यों की

४७ कयवज्जसणिहाण पंचमुट्ठिलोओ .....पृ. ४०

त्यों उद्धृत की गयी है। ऋषभदेव के चरित का विस्तार से वर्णन करने वाला यह प्रथम ग्रन्थ है। इसमें पांच परिच्छेद हैं। ग्रन्थ का परिणाम ११००० श्लोक प्रमाण है।

६. ऋषभदेव चरियं

इसका दूसरा नाम 'धर्मोपदेशशतक' भी है यह ग्रन्थ-रत्न तीन सौ तेईस गाथाओं में निबद्ध है। इसके रचियता भुवनतुंगसूरि हैं।

७. सिरि उसहणाहचरियं[४८]

श्री हेमचन्द्राचार्य विरचित 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' के दस पर्वों में से प्रथम पर्व, जिसमें मुख्यतः कौशलिक-श्री ऋषभदेव का विस्तृत वर्णन है उसका प्राकृत रूपान्तर प्रस्तुत ग्रन्थ 'सिरि उसहणाहचरियं' में किया गया है। प्राकृत रुपान्तर करने वाले प्राकृत भाषा विशारद श्री विजयकस्तूरसूरिजी हैं।

८. कहावली

इस महत्त्वपूर्व कृति के रचियता भद्रेश्वरसूरि हैं जो अभयदेवसूरि के गुरु थे। इनका समय १२वीं शताब्दी के मध्य के आसपास माना जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में त्रेसठ महापुरुषों का चरित्र वर्णित है। इसकी रचना प्राकृत गद्य में की गई है, तथापि यत्र-तत्र पद्य भी संप्राप्त होते हैं। ग्रन्थ में किसी प्रकार के अध्यायों का विभाग नहीं है। यह कृति पश्चात् कालीन त्रिषष्टि शलाकापुरुष महाचरित आचार्य हेमचन्द्र विरचित की रचनाओं का आधार है। इसकी प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में उपलब्ध है।

९. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति[४९]

प्रस्तुत ग्रन्थ शुभशीलगणी विरचित है। सम्पूर्ण ग्रन्थ प्राकृत भाषा में होने पर भी कहीं-कहीं श्लोकों की भाषा संस्कृत है। इसमें विविध महापुरुषों का चरित्र-चित्रण किया गया है। कुल मिलाकर सड़सठ महापुरुषों एवं त्रेपन महासतीयों की जीवन-कथाओं का वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। सर्वप्रथम श्री ऋषभदेव के जीवन चरित्र का वर्णन है। उनसे सम्बन्धित निम्न घटनाएँ इस ग्रन्थ में उल्लिखित हैं–

(१) ऋषभदेव भगवान् की द्वादश पूर्वभवों का कथन।
(२) माता मरुदेवी के चौदह स्वप्न।
(३) भगवान् का जन्म।
(४) नामकरण, वंश स्थापना।
(५) अकाल मृत्यु।
(६) भगवान् का विवाह, संतानोत्पत्ति।
(७) राज्याभिषेक ।
(८) कलाओं का परिज्ञान।
(९) चतुर्मुष्टि लोच एवं दीक्षा।
(१०) एक वर्ष पश्चात् श्रेयांस द्वारा आहार-दान।
(११) नमि-विनमि को विद्याधर की ऋद्धि।

---

४८ श्री विजयकस्तूरसूरीश्वरजी महाराज, सम्पादक- चन्द्रोदय विजयगणि, प्रकाशक- श्री नेम विज्ञान कस्तूरसूरि ज्ञानमंदिर, सूरत, ई. सन् १९६८।

४९ श्री शुभशीलगणि विरचित, भाषान्तर– शाह मोतीचन्द ओघवजी, प्रकाशक - शाह अमृतलाल ओघवजी, अहमदाबाद, ई. सन् १९३८।

(१२) भगवान् को केवलज्ञान की उत्पत्ति।
(१३) माता मरुदेवी को केवलज्ञान एवं निर्वाण।
(१४) समवसरण, भगवद्देशना (मधुबिन्दु की कथा)।
(१५) भरतपुत्र पुंडरीक को प्रथम गणधर की पदवी।
(१६) भरत की दिग्विजय का वर्णन।
(१७) सुन्दरी की दीक्षा।
(१८) भरत-बाहुबली के पञ्च युद्ध।
(१९) बाहुबली की दीक्षा एवं केवलज्ञान।
(२०) ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति।
(२१) मरीचि का अभिमान।
(२२) प्रथम गणधर पुंडरीक की मुक्ति।
(२३) भगवान् ऋषभदेव का निर्वाण।
(२४) भगवान् का अग्नि-संस्कार।
(२५) भरत को आरिसा भवन में केवलज्ञान।
(२६) भरत का निर्वाण।

यहाँ मुख्य ध्यान देने की तीन बातें हैं- प्रथम तो भरतपुत्र 'पुंडरीक' की प्रथम गणधर पदवी। त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक निर्युक्ति आदि में प्रथम गणधर का नाम 'ऋषभसेन' दिया है। द्वितीय प्रमुख बात मरुदेवी का अग्नि-संस्कार है, जबकि अन्य श्वेताम्बर ग्रन्थों में मरुदेवी माता के कलेवर को क्षीर-समुद्र में प्रक्षिप्त करने का उल्लेख मिलता है। भरत-बाहुबली के युद्ध में दृष्टियुद्ध, बाहुयुद्ध, मुष्टियुद्ध, दण्डयुद्ध एवं वचनयुद्ध– इन पाँच युद्धों का निर्देश किया है। इससे पूर्व भरत एवं बाहुबली की सेना का परस्पर द्वादश वर्ष तक घमासान युद्ध चलने का आचार्य ने वर्णन किया है। इस प्रकार कथा सूत्र इसमें विकसित हुआ है।

*** संस्कृत-साहित्य मे ऋषभदेव :**

१. महापुराण[५०]

प्रस्तुत ग्रन्थ महापुराण जैन पुराण ग्रन्थों में मुकुटमणि के समान है। इसका दूसरा नाम 'त्रिषष्टि लक्षण महापुराण संग्रह' भी है। इसके दो खण्ड हैं- प्रथम आदिपुराण या पूर्वपुराण और द्वितीय उत्तरपुराण। आदिपुराण सैंतालीस वर्षों में पूर्ण हुआ है, जिसके बयालीस पर्व पूर्ण तथा तैतालीसवें पर्व के तीन श्लोक जिनसेनाचार्य के द्वारा विरचित हैं और अवशिष्ट पाँच पर्व तथा उत्तरपुराण श्री जिनसेनाचार्य के प्रमुख शिष्य गुणभद्राचार्य द्वारा निर्मित हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ मात्र पुराण ग्रन्थ ही नहीं, अपितु महाकाव्य है।

महापुराण का प्रथम खण्ड आदिपुराण है, जिसमें तीर्थङ्कर श्री ऋषभनाथ और उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती का सविस्तृत वर्णन किया गया है। तृतीय आरे के अन्त में जब भोगभूमि नष्ट हो रही थी और कर्मभूमि का नव प्रभात उदित हो रहा था उस समय भगवान् ऋषभदेव का नाभिराजा के यहाँ मरुदेवी माता की कुक्षि में जन्म धारण करना, नाभिराज की प्रेरणा से कच्छ, महाकच्छ राजाओं की बहिनें यशस्वती व सुनन्दा के साथ पाणिग्रहण करना, राज्यव्यवस्था का सूत्रपात, पुत्र और पुत्रियों को विविध कलाओं में पारङ्गत करना

५० श्री जिनसेनाचार्य विरचित, आदिपुराण, संपादक– पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, प्रकाशक– भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९३१।

और अन्त में नीलाञ्जना का नृत्यकाल में अचानक विलीन हो जाना ऋषभदेव की वैराग्य-साधना का आधार बन गया। तत्पश्चात् उन्होंने चार हजार राजाओं के साथ संयम ग्रहण किया, ऋषभदेव ने तो छह माह का अनशन तप स्वीकार कर लिया, परन्तु अन्य सहदीक्षित राजा लोग क्षुधा-तृषा आदि की बाधा सहन न कर सकने के कारण पथ-भ्रष्ट हो गये। छह माह की समाप्ति पर भगवान् का भिक्षा के लिये घूमना, पर आहार-विधि का ज्ञान न होने से भगवान् का छह माह तक निराहार रहना हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ के लघुभ्राता श्रेयांस का इक्षुरस दान तथा अन्त में एकान्त आत्म-साधना व घोर तपश्चर्या से एक हजार वर्ष पश्चात् केवलज्ञान की प्राप्ति का वर्णन जिस रीति से आचार्य ने प्रस्तुत किया है, उसे पढ़ते-पढ़ते हृदय मयूर सहसा नाच उठता है।

इसके बाद आचार्य ने भरत की दिग्विजय का मानो आखों देखा वर्णन किया है। भरतक्षेत्र को अपने अधीन कर सम्राट भरत ने राजनीति का विस्तार किया, स्वाश्रित सम्राटों की शासन पद्धति की शिक्षा दी, व्रती के रूप में ब्राह्मण-वर्ण की स्थापना की, वे षट्खण्ड के अधिपति होते हुए भी उसमें आसक्त नहीं थे। भगवान् ऋषभदेव ने केवलज्ञान के पश्चात दिव्यध्वनि द्वारा समस्त आर्यावर्त की जनता को हितोपदेश दिया। आयु के अन्त में कैलाश पर्वत पर निर्वाण प्राप्त किया। भरत चक्रवर्ती भी गृहवास से विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण करते हैं तथा अन्तर्मुहूर्त में हीं केवलज्ञान की ज्योति को उद्भूत करते हैं। केवलज्ञानी भरत भी आर्य देशों में विचरण कर, समस्त जीवों को हितोपदेश देकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत महापुराण दिगम्बर परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। दिगम्बर परम्परा के जितने भी अन्य ग्रन्थ हैं उन सभी के कथा का मूलस्त्रोत यही ग्रन्थ है। श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में जो कथानक में अन्तर है वह इनमें सहज रूप से देखा जा सकता है।

आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण मे ओज, माधुर्य प्रसाद, रस, अलंकार आदि काव्य गुणों से युक्त भगवान् ऋषभदेव का सम्पूर्ण जीवन काव्यमयी शैली से चित्रित किया है, जो यथार्थता की परिधि को न लांघता हुआ भी हृदयग्राही है।

२. हरिवंशपुराण[५१]

हरिवंश पुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन पुन्नाट संघ के थे, ये महापुराण के कर्त्ता जिनसेन से भिन्न हैं। यह पुराण भी दिगम्बर-सम्प्रदाय के कथा-साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखता है। प्रस्तुत पुराण में मुख्यतः त्रेसठ शलाका महापुरुष चरित्र में से दो शलाकापुरुषों का चरित्र वर्णित हुआ है। एक बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ जिनके कारण इसका दूसरा नाम 'अरिष्टनेमिपुराण संग्रह' भी है और दूसरा नवें वासुदेव श्रीकृष्ण। प्रसंगोपात्त सप्तम सर्ग से त्रयोदश सर्ग पर्यन्त प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव और प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत का चरित्र-चित्रण भी इसमें विस्तृत रूप से प्रतिपादित किया गया है।

कालद्रव्य का निरूपण करते हुए उन्होने काल को उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के रूप में दो भागों में विभक्त किया है। वर्तमान अवसर्पिणी काल के भोगभूमि आरों का वर्णन, कुलकरों की उत्पत्ति, उनके कार्य, दण्ड-व्यवस्था आदि का वर्णन किया गया है।

नाभि कुलकर के यहां ऋषभ का जन्म, कर्मभूमि की रचना, कलाओं शिक्षा, नीलाञ्जना नर्तकी को देख भगवान् का वैराग्य, संयम-साधना, नमि-विनमि को धरणेन्द्र द्वारा राज्य प्राप्ति, श्रेयांस द्वारा इक्षुरस का दान, शकटास्य वन में केवलज्ञानोपत्ति, भगवान् का सदुपदेश आदि का वर्णन विस्तृत व सुन्दर शैली में प्रस्तुत किया है।

---

५१ पुन्नाट संघीय आचार्य जिनसेन विरचित, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९६२।

सम्राट भरत के वर्णन में उन्होंने भरत की दिग्विजय का साङ्गोपाङ्ग चित्र उपस्थित किया है। बाहुबली के साथ हुए अहिंसक युद्ध में दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध का वर्णन किया गया है। द्वादशवें सर्ग में जयकुमार व सुलोचना का वर्णन है। जयकुमार का एकसौ आठ राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण करने आदि का वर्णन है। यह वर्णन श्वेताम्बर-परम्परा में नहीं मिलता। इसी सर्ग के अन्त में ८४ गणधरों के नाम, शिष्य परम्परा व भगवान् के संघ का वर्णन तथा भगवान् ऋषभदेव के मोक्ष पधारने का उल्लेख किया गया है।

त्रयोदश सर्ग के प्रारम्भ में चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति को राज्य देकर दीक्षा लेना तथा अन्त में वृषभसेन आदि गणधरों के साथ कैलास पर्वत पर मोक्ष प्राप्त करने का वर्णन है। तत्पश्चात् सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं का विस्तृत समुल्लेख करते हुए ऋषभदेव चरित्र की परिसमाप्ति की गई है।

३. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित महाकाव्य[५२]

यह ग्रन्थ महाकाव्य की कोटि में आता है। काव्य के जो भी लक्षण हैं, वे इसमें पूर्वतया विद्यमान हैं। इसकी रचना कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद हेमचन्द्राचार्य ने की है। इसकी भाषा संस्कृत है। अलंकारों, उपमाओं और सुभाषितों का यह आकर है। इसमें त्रेसठ उत्तम पुरुषों के जीवन-चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। शलाका पुरुषों के अतिरिक्त इसमें सैकड़ों अवान्तर कथाओं का भी वर्णन है। उक्त ग्रन्थ दस पर्वों में विभक्त है। प्रथम पर्व में विस्तृत रूप से भगवान् ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती का वर्णन किया गया है। संक्षेप में ऋषभदेव भगवान् की निम्न घटनाओं का इस ग्रन्थ में चित्रण हुआ है—

(१) भगवान् ऋषभदेव के बारह पूर्व भवों का वर्णन।
(२) प्रथम कुलकर विमलवाहन का पूर्व भव।
(३) भगवान् ऋषभदेव की माता के स्वप्न एवं उनका फल।
(४) भगवान् ऋषभदेव का जन्म व जन्मोत्सव।
(५) नामकरण, वंशस्थापन एवं रूप वर्णन।
(६) सुनन्दा के भ्राता की अकाल मृत्यु।
(७) भगवान् का विवाह, सन्तानोत्पत्ति।
(८) राज्याभिषेक, कलाओं की शिक्षा।
(९) वसन्तवर्णन, वैराग्य का कारण।
(१०) महाभिनिष्क्रमण।
(११) साधनावस्था।
(१२) श्रेयांसकुमार से इक्षुरस का पारणा।
(१३) केवलज्ञान, समवसरण।
(१४) माता मरुदेवी को केवलज्ञान और मोक्ष।
(१५) चतुर्विध संघ-संस्थापना।
(१६) भरत की दिग्विजय का वृत्तान्त।
(१७) भरत-बाहुबली युद्ध।
(१८) बाहुबली की दीक्षा, केवलज्ञान।
(१९) परिव्राजकों की उत्पत्ति।

---

५२ कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य विरचित, संपादक-मुनि चरणविजयजी, आत्मानन्द सभा, भावनगर (सौराष्ट्र) सन् १९३६

(२०) ब्राह्मणो एवं यज्ञोपवीत की उत्पत्ति।

(२१) भगवान् ऋषभदेव का धर्म-परिवार, निर्वाणोत्सव।

(२२) भरत का वैराग्य, केवलज्ञान एवं निर्वाण।

भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से यह उत्कृष्ट महाकाव्य है।

४. त्रिषष्टिस्मृति शास्त्र[५३]

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता प्रसिद्ध पंडित आशाधर हैं। इन्होंने लगभग १९ ग्रन्थों की रचना की है जिनमें कई अनुपलब्ध हैं। प्रस्तुत 'त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र' कृति इनकी महत्त्वपूर्ण काव्य-कृति है। इसमें त्रेसठ शलाका महापुरुषों के जीवन-चरित अति संक्षिप्त रूप में वर्णित हैं। यह श्रीमद् जिनसेनाचार्य एवं गुणभद्र के महापुराण का सार रूप ग्रन्थरत्न है। इसको पढ़ने से महापुराण का सारा कथा-भाग स्मृति-गोचर हो जाता है। ग्रन्थकार ने इस पर स्वोपज्ञ 'पंजिका' टीका लिखी है। सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना चौबीस अध्यायों में विभक्त है। समस्त ग्रन्थ की रचना सुन्दर अनुष्टुप् छन्द में की गई है। इस ग्रन्थ का प्रमाण ४८० श्लोक है। जो नित्य स्वाध्याय के लिये रचा गया था। इसका रचनाकाल सं० १२९२ है।

५. आदिपुराण-उत्तरपुराण

इस ग्रन्थ का अपरनाम 'ऋषभदेवचरित' तथा 'ऋषभनाथचरित' भी है। इसमें बीस सर्ग हैं। इन दोनों कृतियों के रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति हैं।

६. रायमल्लाभ्युदय

इसके रचयिता उपाध्याय पद्मसुन्दर हैं जो नागोर तपागच्छ के बहुत बड़े विद्वान् थे। ये अपने युग के एक प्रभावक आचार्य थे। उन्होंने दिगम्बर सम्प्रदाय के रायमल्ला (अकबर के दरबारी सेठ) की अभ्यर्थना एवं प्रेरणा से उक्त काव्य ग्रन्थ की संरचना की थी, अतः इसका नाम 'रायमल्लाभ्युदय' रखा गया।

इस ग्रन्थ-रत्न में चौबीस तीर्थङ्करों का जीवन चरित्र महापुराण के अनुसार दिया गया है। इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध होती है जो खम्भात के 'कल्याणचन्द्र जैन पुस्तक भण्डार' में सुरक्षित है।

७. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता मेघविजय उपाध्याय हैं। इन्होंने यद्यपि इस ग्रन्थ की निर्मिति आचार्य हेमचन्द्र के बृहत्काय ग्रन्थ 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' के आधार पर की है, तथापि अनेक प्रसंग एकदम नवीन ग्रहण किये हैं जो हेमचन्द्राचार्य की कृति में नहीं पाये जाते। इस कृति के नाम के पीछे दो बातों का अनुमान किया जा सकता है। एक तो यह कि प्रस्तुत कृति आचार्य हेमचन्द्र की त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित को सामने रखकर रची गई है अथवा आचार्य हेमचन्द्र ने जिन प्रसंगों को छोड़ दिया है, उन प्रसंगों को शामिल कर लेने पर भी कलेवर की दृष्टि से लघुकाय इस कृति का नाम 'लघुत्रिषष्टिशलाका' रखने में आया हो। यह कृति संक्षेप रुचिवालों के लिये अति उपकारक है। इसका ग्रन्थमान ५००० श्लोक प्रमाण है।

ये तीनों ही ग्रन्थ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित से प्रभावित रचनाएँ हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य भी रचनाएँ हैं जो त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित एवं महापुराण पर आधारित हैं-

(१) लघु महापुराण या लघु त्रिषष्टि लक्षण महापुराण-चन्द्रमुनि विरचित।

---

५३ माणिक्यचन्द्र दिगम्बर, जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३७, जिनरत्नकोश, पृ० १६५।

(२) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित-विमलसूरि विरचित।

(३) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित-वज्रसेनविरचित।

(४) त्रिषष्टिशलाकापंचाशिका-कल्याणविजयजी के शिष्य द्वारा विरचित। ५० पद्यों में ग्रथित ग्रन्थ-रत्न।

(५) त्रिषष्टिशलाकापुरुष विचार-अज्ञात।६३ गाथाओं में ग्रथित।

(६) तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु (त्रिषष्टिमहापुरुषगुणालंकार) या महापुराण— इसमें त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित्र हैं। इसके दो खण्ड हैं— आदिपुराण और उत्तरपुराण। आदिपुराण में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव का संक्षिप्त वर्णन है। इसके कर्त्ता महाकवि पुष्पदन्त हैं। यह ग्रन्थ आधुनिक पद्धति से सुसम्पादित एवं प्रकाशित है।

८. महापुराण

प्रस्तुतु पुराण ग्रन्थ के रचयिता मुनि मल्लिषेण हैं। इस ग्रन्थ का रचनाकाल शक सं० ९६९ (वि० ११०४) ज्येष्ठ सुदी ५ दिया गया है। अतः ग्रन्थकार का समय विक्रम की ग्यारहवीं के अन्त में और १२वीं सदी के प्रारम्भ में माना गया है। ये एक महान् मठपति थे तथा कवि होने के साथ-साथ बड़े मंत्रवादी थे। इन्होंने उक्त ग्रन्थ की रचना धारवाड़ जिले के अन्तर्गत मुलगुन्द में की थी। इसमें त्रेसठ शलाका पुरुषों की संक्षिप्त कथा हैं अतः उक्त ग्रन्थ का अपर नाम त्रिषष्टिमहापुराण' या 'त्रिषष्टि-शलाकापुराण' भी प्रचलित है। इस ग्रन्थ का परिमाण दो हजार श्लोकों का है। रचना अति सुन्दर एवं प्रासाद गुण से अलंकृत है।

९. पुराणसार

इसमें चौबीस तीर्थङ्करों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यह संक्षिप्त रचनाओं में प्राचीन रचना है।

इसके रचयिता लाट बागड़संघ और बलाकागण के आचार्यश्री नन्दी के शिष्य मुनि श्रीचन्द्र हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना वि. सं. १०८० में समाप्त की थी। इनकी अन्य कृतियों में महाकवि पुष्पदन्त के महापुराण पर टिप्पण तथा शिवकोटि की मूलाराधना पर टिप्पण हैं। इन ग्रन्थों के पीछे प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है, कि ये सब ग्रन्थ प्रसिद्ध परमार नरेश भोजदेव के समय में धारा नगरी में लिखे गये हैं।

१०. पुराणसार संग्रह

प्रस्तुत ग्रन्थ में आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन छह चरित्रों का संकलन किया गया है। इसके २७ सर्गों में से पाँच सर्गों में आदिनाथ के चरित्र का वर्णन किया गया है।

इसके रचयिता दामनन्दी आचार्य हैं ऐसा अनेक सर्गों के अन्त में दिये गये पुष्पिका वाक्यों से ज्ञात होता है। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य के लगभग माना जाता है।

११. चतुर्विंशतिजिनेन्द्र संक्षिप्तचरितानि

प्रस्तुत ग्रन्थ आचार्य अमरचन्द्रसूरि विरचित है। ये अपने समय के बहुत बड़े कवि थे। उक्त ग्रन्थ के अतिरिक्त इनके पद्मानन्द, बालभारत आदि तेरह ग्रन्थ और भी हैं।

जैसा ग्रन्थ के नाम से ही ज्ञात होता है, इसमें २४ तीर्थङ्करों का संक्षिप्त जीवन-चरित्र है, जो २४ अध्यायों एवं १८०२ पद्यों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में तीर्थङ्करों का पूर्वभव, वंश परिचय, नामकरण की सार्थकता, च्यवन, गर्भ, जन्म, दीक्षा, मोक्ष का दिवस, चैत्यवृक्ष की ऊँचाई, गणधर, साधु साध्वी, चौदहपूर्वधारी,

अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी. केवली, विक्रिया ऋद्धिधारी, वादी, श्रावक, श्राविका-परिवार, आयु, बाल्यावस्था, राज्य काल, छद्मस्थ अवस्था, केवली अवस्था आदि का सारगर्भित विवरण इसमें प्राप्त होता है।

१२. महापुरुषचरित

इस ग्रन्थ के रचयिता मेरुतुंग हैं। ग्रन्थ पाँच सर्गों में विभक्त है। जिनमें क्रमशः ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर प्रभु के जीवन-चरित्र का उल्लेख है। प्रस्तुत ग्रन्थ पर एक टीका भी है, जो संभवतः स्वोपज्ञ है। उसमें उक्त ग्रन्थ को 'काव्योपदेशशतक' या 'धर्मोपदेशशतक' भी कहा गया है।

१३. अन्य चरित्र

वडगच्छीय हरिभद्रसूरि ने 'चौबीस तीर्थङ्कर चरित्र' की रचना की, जो वर्तमान में अनुपलब्ध है। नवांगी टीकाकार अभयदेव के शिष्य वर्धमान सूरि ने संवत् ११६० में 'आदिनाथ चरित्र' का निर्माण किया। बृहद्गच्छीय हेमचन्द्रसूरि ने 'नाभिनेमि द्विसंधानकाव्य' की रचना की। हेमविजयजी का 'ऋषभशतक' भी उपलब्ध होता है। आचार्य हेमचन्द्र के सुशिष्य रामचन्द्रसूरि ने 'युगादिदेव द्वात्रिंशिका' ग्रन्थ का निर्माण किया।

इसी प्रकार अज्ञात लेखक के 'आदिदेवस्तव', 'नाभिस्तव' आदि ऋषभदेव की संस्तुति के रूप में साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। कितने ही ग्रन्थ अप्रकाशित हैं जो केवल भण्डारों में हस्तलिखित प्रतियों के रूप में उपलब्ध होते हैं और कितने ही प्रकाशित हो चुके हैं।

१४. भरत बाहुबलिमहाकाव्यम्[५४]

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता श्री पूज्यकुशलगणी हैं। ये तपागच्छ के विजयसेनसूरि के प्रशिष्य और पण्डित सोमकुशलगणी के शिष्य थे। प्रस्तुत काव्य का रचना समय सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में है।

पञ्जिकाकार ने इसे महाकाव्य कहा है किन्तु इसमें जीवन का सर्वांगीण चित्रण नहीं हुआ है। केवल भरत बाहुबली के युद्ध का ही प्रसंग है। अतः यह एकार्थ-काव्य या काव्य है। चक्रवर्ती भरत छह खण्ड विजय के पश्चात् राजधानी अयोध्या में प्रवेश करते हैं किन्तु उनका चक्र आयुधशाला में प्रवेश नहीं करता। उसका रहस्य ज्ञात होने पर भरत बाहुबली के पास दूत प्रेषित करते हैं और दोनों भाई युद्धक्षेत्र में मिलते हैं। बारह वर्ष तक युद्ध होता है अन्त में बाहुबली भगवान् ऋषभदेव का पथ अपनाते हैं और सम्राट भरत ते भी अनासक्तिमय जीवन जीते हैं और केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। कवि ने कमनीय कल्पना से प्रस्तुत प्रसंग को खूब ही सजाया है, संवारा है। वर्णन शैली अत्यधिक रोचक है जिससे पाठक कहीं पर भी ऊबता नहीं है। इसमें अठारह सर्ग हैं। अन्तिम श्लोक का छन्द मुख्य छन्द से पृथक् है। शान्त रस के साथ ही शृंगार रस और वीर रस की प्रधानता है।

भाषा शुद्ध संस्कृत है जो सरस, सरल और लालित्यपूर्ण है। भाषा में जटिलता नहीं, सहजता है। मुख्य रूप से इसमें प्रसाद और लालित्य गुण आया है पर कहीं-कहीं ओज गुण भी आया है।

१५. पद्मानन्द महाकाव्य[५५]

श्री अमरचन्द्रसूरि विरचित 'पद्मानन्द महाकाव्य' उन्नीस सर्गों में विभक्त है। इसका दूसरा नाम 'जिनेन्द्र चरित्र' भी है। इस सम्पूर्ण काव्य में आदि तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव के जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है। इसकी रचना कवि ने कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि कृत 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' के आधार पर की है। यह काव्य संस्कृत-वाङ्मय की अमूल्य निधि है।

५४ अनुवादक-मुनि दुलहराज, प्रकाशक-जैन-विश्व भारती लाडनुं (राजस्थान), सन् १९७४

५५ श्री अमरचन्द सूरि विरचित, तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य में उद्धत परिचय, पृ० ३०१-३२२, लेखक-डॉ. श्यामशंकर दीक्षित, प्रकाशक-मलिक एण्ड कम्पनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर ३ सन् १९६९।

इसके प्रथम सर्ग में जिनेश्वर स्तुति के पश्चात् काव्य-निर्माण का कारण बताया गया है। द्वितीय सर्ग से लेकर षष्ठम सर्ग तक ऋषभदेव के द्वादश पूर्व-भवों का उल्लेख है। सप्तम सर्ग में कुलकरोत्पत्ति और प्रभु के जन्मोत्सव का वर्णन है। अष्टम सर्ग में ऋषभदेव की बाल-लीलाओं तथा सुमङ्गला एवं सुनन्दा से पाणिग्रहण का वर्णन है। नवम सर्ग में भरत, ब्राह्मी, बाहुबली एवं सुन्दरी के जन्म का वर्णन किया गया है। दशम सर्ग में ऋषभदेव के राज्याभिषेक, विनीता नगरी की स्थापना और राज्यव्यवस्था का वर्णन है। एकादश सर्ग में भगवान् के षड्ऋतु विलास का विस्तृत वर्णन किया गया है। द्वादश सर्ग में ऋषभदेव की वसन्तोत्सव क्रीडा का वर्णन है तथा लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर उनके विरक्त होने का उल्लेख किया गया है। सम्राट ऋषभ के द्वारा भरत का राज्याभिषेक किया गया और स्वयं ऋषभदेव का सांवत्सरिक दान देकर दीक्षा ग्रहण करने का, एवं दीक्षित होते ही मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होने का वर्णन है।

इसके पश्चात् त्रयोदश सर्ग में नमि-विनमि की ऋषभदेव में अटूट श्रद्धा-भक्ति देखकर इन्द्र का उन्हें विद्याधरैश्वर्य पद प्रदान करना, श्रेयांस का इक्षुरस द्वारा पारणा कराना तथा ऋषभदेव को केवलज्ञान होना आदि घटनाओं का वर्णन है। चतुर्दश सर्ग में प्रभु का समवसरण, मरुदेवी का आगमन और उसकी निर्वाणोपलब्धि, समवसरण में ऋषभदेव की देशना तथा संघ-स्थापना का विवरण दिया गया है। पञ्चदश सर्ग में भरत की दिग्विजय का वर्णन है। षोडश सर्ग में भरत का चक्रित्वाभिषेक, सुन्दरी का अष्टापद पर ऋषभदेव से दीक्षा ग्रहण करना और भरत एवं बाहुबली के अतिरिक्त भाइयों के दीक्षा ग्रहण का वर्णन किया गया है। सप्तदश सर्ग में भरत-बाहुबली के युद्ध का वर्णन है। भरत का पराजय, बाहुबली की दीक्षा एवं केवलज्ञान का निरूपण किया गया है। अष्टादश सर्ग में मरीचि के अन्तिम तीर्थङ्कर बनने की भविष्यवाणी, ऋषभदेव का अष्टापद पर निर्वाण, भरत के केवलज्ञानोपलब्धि तथा निर्वाण का वर्णन है। एकोनविंश सर्ग में आचार्य ने अपनी गुरु-परम्परा तथा प्रस्तुत काव्य की रचना के प्रेरक पद्ममन्त्री की वंशावली का विवरण दिया है। कथानक की परिसमाप्ति तो अष्टादश सर्ग के साथ हो जाती है।

१६. भक्तामर स्तोत्र

प्रस्तुत स्तोत्र के रचयिता आचार्य मानतुङ्ग हैं। ये वाराणसी के तेजस्वी शासक हर्षदेव के समकालीन थे। इनके पिता का नाम धनदेव और माता का नाम धनश्री था। मानतुङ्ग बाल्यकाल से ही महान् प्रतिभा के धनी थे। अतः दीक्षा लेने पर आचार्य ने इन्हें योग्य समझकर अनेक चमत्कारिक विद्याएँ सिखलायीं।

एक दिन राजा हर्षदेव ने बाण और मयूर ब्राह्मणों की विद्याओं का चमत्कार देखा। बाण के कटे हुए हाथ-पैर जुड़ गये और मयूर का कुष्ठरोग नष्ट हो गया। हर्षदेव अत्याधिक प्रभावित हुए और उन्होंने सभा में उद्घोषण की कि 'आज विश्व में चमत्कारिक विद्याओं का एकमात्र धनी ब्राह्मण समुदाय ही है।'

राजा का मंत्री जैन धर्मानुयायी था। उसने निवेदन किया कि इस वसुन्धरा पर अनेक नररत्न हैं। जैनियों के पास भी चमत्कारिक विद्याओं की कमी नहीं है। यहां पर सम्प्रति आचार्य मानतुङ्ग हैं जो बड़े ही चमत्कारिक हैं। राजा ने शीघ्र ही अपने अनुचरों को भेजकर मानतुंग को बुलवाया। आते ही राजा ने उनको चवालीस लोहे की जंजीरों से बांधकर एक भवन में बन्द कर दिया।

आचार्य मानतुङ्ग चमत्कार प्रदर्शन करना नहीं चाहते थे। जैनधर्म की दृष्टि से चमत्कारिक प्रयोग करना मुनि के लिए निषिद्ध है। वे भगवान् ऋषभदेव की स्तुति में लीन हो गये। भक्तिरस से छलछलाते हुए चवालीस श्लोक बनाये और प्रति श्लोक के साथ ही जंजीरें एक-एक कर टूट पड़ीं। स्तोत्र भक्तामर के नाम से प्रसिद्ध है। बाद में चार श्लोक और बना दिये गये। जिससे वर्तमान में इस स्तोत्र में अड़तालीस श्लोक हैं। स्तोत्र का छन्द वसन्ततिलका है जो संस्कृत साहित्य में बहुत ही मधुर और श्रेष्ठ छन्द माना जाता है। आचार्य मानतुङ्ग के प्रस्तुत प्रयोग से राजा हर्षदेव अत्यधिक प्रभावित और प्रसन्न हुआ और

उनके पावन उपदेश को श्रवण कर वह जैन धर्मावलंबी बन गया।

सम्पूर्ण जैन समाज में इस स्तोत्र का सर्वाधिक प्रचलन है। स्तोत्र की प्रारम्भिक शब्दावली के कारण प्रस्तुत स्तोत्र भक्तामर के नाम से विश्रुत हैं। इस स्तोत्र का अपरनाम 'ऋषभदेव स्तोत्र' और 'आदिनाथ स्तोत्र' भी है। भक्ति की भागीरथी इस स्तोत्र के प्रत्येक पद्य में प्रवाहित है। सहस्रों व्यक्तियों को यह स्तोत्र कण्ठस्थ है और प्रतिदिन श्रद्धा से विभोर होकर पाठ भी करते हैं।

भक्तामर स्तोत्र की अत्याधिक लोकप्रियता होने से अनेक भक्त कवियों ने इस पर समस्या पूर्ति भी की है, और वृत्तियाँ भी लिखी हैं।

भावप्रभसूरि, जिनका समय संवत् १७११ हैं, उन्होंने 'भक्तामर समस्यापूर्ति' स्तोत्र की रचना की। मेघविजय उपाध्याय ने 'भक्तामर टीका' का निर्माण किया। श्री गुणाकर जिनका समय संवत् १४२६ है, उन्होंने 'भक्तामरस्तोत्रवृत्ति' लिखी। स्थानकवासी आचार्य मुनि श्री घासीलालजी महाराज ने 'भक्तामर स्तोत्र' के आदि शब्द के अनुसार ही 'वर्धमान भक्तामर स्तोत्र' की रचना की।

इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक ग्रन्थ भक्तामर एवं उसकी समस्या पूर्ति के नाम पर प्राप्त होते हैं।

भक्तामर स्तोत्र के अतिरिक्त ऋषभदेव भगवान् की स्तुति के और भी स्तोत्र उपलब्ध होते हैं, जिनमें निम्न स्तोत्र विशेषतया ज्ञातव्य हैं-

(१) ऋषभजिन स्तुति-रचयिता श्री जिनवल्लभसूरि, १२वीं शती।

(२) ऋषभजिन स्तवन-श्री जिनप्रभसूरि यह पद्यमय १९ छन्दों का स्तवन है।

(३) भरतेश्वर अभ्युदय-पं. आशाधरजी।

(४) आदिदेवस्तव।

(५) नाभिस्तव।

(६) युगादिदेव द्वात्रिंशिका।

इन तीनों के कर्ता आचार्य हेमचन्द के शिष्य रामचन्द्र सूरि हैं।[५६]

सत्रहवीं शताब्दी के प्रतिभासम्पन्न कवि उपाध्याय यशोविजयजी ने भी 'श्री आदिजिनस्तोत्रम्' की रचना की है। यह स्तोत्र केवल छह श्लोकों में निबद्ध है।[५७]

* आधुनिक साहित्य में ऋषभदेव :

आधुनिक चिन्तकों ने भी भगवान् ऋषभदेव पर शोधप्रधान तुलनात्मक दृष्टि से लिखा है। कितने ही ग्रन्थ अति महत्त्वपूर्ण हैं। संक्षेप में आधुनिक साहित्य का परिचय इस प्रकार है—

(१) चार तीर्थङ्कर[५८]

इसके लेखक प्रज्ञामूर्ति पं. सुखालालजी हैं। उन्होंने संक्षेप में सारपूर्ण भगवान् ऋषभदेव के तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला है।

(२) भरत-मुक्ति[५९]

इसके लेखक आचार्य तुलसी हैं। ग्रन्थ की सविस्तृत प्रस्तावना में मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम'

---

५६ जैनस्तोत्र समुच्चय, मुखि चतुरविजय द्वारा सम्पादित, निर्णय सागर प्रेस बम्बई वि. स. १९८४ में मुद्रित पृ. २६।

५७ स्तोत्रावली, सम्पादक-यशोविजयजी, प्रकाशक-यशोभारती जैन प्रकाशन समिति, बम्बई, सन् १९७५।

५८ पं. श्री सुखलालजी संधवी, श्री जैन संस्कृति संशोधन मंडल, बनारस-५, सन् १९५३।

५९ आचार्य तुलसी, चक्रवर्ती भरत के जीवन पर आधारित प्रबन्ध काव्य, रामलाल पुरी, संचालक-आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली ६, सन् १९६४।

ने विस्तार से ऋषभदेव के जीवन से सम्बन्धित विविध पहलुओं को प्रमाण पुरस्सर निखारने का प्रयास किया है। यह प्रस्तावना अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यही प्रस्ताना 'तीर्थङ्कर ऋषभ और चक्रवर्ती भरत' के नाम से पृथक पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुई है।

(३) जैनधर्म का मौलिक इतिहास[६०]

इसके लेखक आचार्य हस्तिमलजी महाराज हैं। ग्रन्थ में ऋषभदेव के जीवन पर प्राक्-ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

(४) जैन साहित्य का इतिहास[६१]

इसके लेखक पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री हैं। उन्होंने संक्षेप में ऋषभदेव की प्रागैतिहासिकता को सिद्ध करने का प्रयास किया है।

(५) भारत का आदि सम्राट[६२]

इसके लेखक स्वामी कमनिन्दजी हैं, जिन्होंने अनेक प्रमाणों से भरत के साथ ऋषभदेव की प्रागैतिहासिकता को वैदिक प्रमाणों के साथ सिद्ध करने का प्रयास किया है।

(६) प्रागैतिहासिक जैन-परम्परा[६३]

इसके लेखक डॉ. धर्मचन्द्र जैन है, जिन्होंने विविध ग्रन्थों के प्रमाण देकर जैन-परम्परा को उजागर किया है। साथ ही ऋषभदेव का प्रागैतिहासिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

(७) भरत और भारत[६४]

इसके लेखक डॉ. प्रेमसागर जैन हैं। इन्होंने बहुत ही संक्षेप में प्रमाण पुरस्सर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सम्राट भरत से ही भारत का नामकरण हुआ है।

ऋषभदेव के सम्बन्ध में भावुक भक्त कवियों ने राजस्थानी, गुजराती व अन्य प्रान्तीय भाषाओं में अनेक चरित्र तथा स्तुतियाँ, भजन, पद व सज्झाय निर्माण किये हैं।

आचार्य अमोलकऋषिजी महाराज ने श्री ऋषभदेव का चरित्र लिखा है। भाषा में राजस्थानी का पुट है। इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक चरित्र उपलब्ध होते हैं। उपाध्याय यशोविजयजी, मोहनविजयजी, आनन्दघनजी, देवचन्द्रजी विनयचन्द्रजी प्रभृति शताधिक कवियों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें ऋषभदेव के प्रति भक्ति-भावना प्रदर्शित की गई है। जैन कवियों ने ही नहीं, अपितु वैदिक परम्परा में भी सूरदास, वारह, रामानन्द, रज्जव, बैजू, लखनदास, नाभादास प्रभृति कवियों ने ऋषभदेव के ऊपर पद्यों का निर्माण किया है।

सारांश यह है कि भगवान् ऋषभदेव पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती व अन्य प्रान्तीय भाषाओं में एवं जैन परम्परा के ग्रन्थों में जिस प्रचुर साहित्य का सृजन हुआ है, वह भगवान् ऋषभ के सार्वभौम व्यक्तित्व को प्रकट करता है। साधन, सामग्री के अभाव में संक्षेप में हमने उपर्युक्त पंक्तियों में जो परिचय दिया है, उससे सहज ही परिज्ञात हो सकता है कि ऋषभदेव जैन परम्परा में कितने समाहित हुए हैं।

---

६० आचार्य हस्तिमलजी महाराज, जैन इतिहास प्रकाशन समिति, लाल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर (राजस्थान)।
६१ पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, भदैनी, वाराणसी वी. निर्वाण संवत् २४८६।
६२ स्वामी कर्मानन्दजी, दिगम्बर जैन समया, मुलतान (वर्तमान में देहली) वी. सं. २४७९, वि. सं. २००६।
६३ डॉ. धरमचन्द जैन, रांका चेरिटेबिल ट्रस्ट, बम्बई-१, भारत जैन महामण्डल, वीर संवत् २५००।
६४ डॉ. प्रेमसागर जैन, दिगम्बर जैन कालिज प्रबन्ध समित, बड़ौत (मेरठ) वीर नि. सं. २३९६।

◆ वैदिक साहित्य में ऋषभदेव

- ✻ वेदों में ऋषभदेव
- ✻ भगवान् ऋषभदेव के विविध रूप
  - १. ऋषभदेव और अग्नि
  - २. ऋषभदेव और परमेश्वर
  - ३. ऋषभदेव और उनके तीन रूप
  - ४. ऋषभदेव और रुद्र
  - ५. ऋषभदेव और शिव
  - ६. ऋषभदेव और हिरण्यगर्भ
  - ७. ऋषभदेव और ब्रह्मा
  - ८. ऋषभदेव और विष्णु
  - ९. ऋषभदेव और गायत्री मंत्र
  - १०. ऋषभदेव और ऋषि पंचमी
  - ११. वातरशना श्रमण
  - १२. केशी
- ✻ भागवत में ऋषभावतार का चित्रण
  - १. पुत्र याचना
  - २. पुत्र के लिए यज्ञ
  - ३. राज्याभिषेक
  - ४. पुत्रों को उपदेश
  - ५. पूर्ण त्यागी
  - ६. अजगर वृत्ति
  - ७. अद्भूत अवधूत
  - ८. महाराजा भरत
  - ९. भरत की साधना
  - १०. भरत की आसक्ति
  - ११. आसक्ति से भरत का मृग बनना
  - १२. राजर्षि भरत की महत्ता
- ✻ स्मृति और पुराणों में ऋषभदेव

◆ वैदिक साहित्य में ऋषभदेव

ऋषभदेव का महत्त्व केवल श्रमण-परम्परा में ही नहीं, अपितु ब्राह्मण-परम्परा में भी रहा है। परन्तु अधिकांशतः जैन यही समझते हैं, कि ऋषभदेव मात्र जैनों के ही उपास्यदेव हैं, तथा अनेकों जैनेतर विद्वद्-वर्ग भी ऋषभदेव को जैन उपासना तक ही सीमित मानते हैं। जैन व जैनेतर दोनों वर्गों की यह भूल-भरी धारणा है क्योंकि अनेकों वैदिक प्रमाण भगवान् ऋषभदेव को आराध्यदेव के रूप में प्रस्तुत करने के लिये विद्यमान हैं। ऋग्वेदादि में उनको आदि आरध्य देव मानकर विस्तृत रूप से वर्णन किया है। यद्यपि कुछ साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण इन मंत्रों के भाष्यकारों ने एक निराला अर्थ कर दिया, किन्तु इससे वास्तविकता को नहीं मिटाया जा सकता। यदि ऋषभ, श्रमण-परम्परा के ही आराध्यदेव होते तो वैदिक संस्कृति में उससे मिलते-जुलते स्वर उपलब्ध नहीं हो सकते थे। यही कारण है, कि डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. जिम्मर, प्रो. विरूपाक्ष वॉडियर प्रभृति विद्वान् वेदों में जैन तीर्थङ्करों का उल्लेख होना स्वीकार करते हैं।

* वेदों में ऋषभदेव :

१. ऋग्वेद

ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ रत्न है। उसकी एक ऋचा में आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव की स्तुति की गई है।[१] वैदिक ऋषि भक्ति-भावना से विभोर होकर उस महाप्रभु की स्तुति करते हुए कहता है- हे आत्मदृष्टा प्रभो ! परमसुख प्राप्त करने के लिये मैं तेरी शरण में आना चाहता हूँ। क्योंकि तेरा उपदेश और तेरी वाणी शक्तिशाली है, उनको मैं अवधारण करता हूँ। हे प्रभो ! सभी मनुष्यों और देवों में तुम्ही पहले पूर्वयाया (पूर्वगत ज्ञान के प्रतिपादक) हो।[२]

ऋग्वेद में ऋषभ को पूर्वज्ञान का प्रतिपादक और दुःखों का नाशक कहा है। वहाँ बताया है कि जैसे जल से भरा मेघ वर्षा का मुख्य स्रोत है, वह पृथ्वी की प्यास बुझा देता है, उसी प्रकार पूर्वी अर्थात् ज्ञान के प्रतिपादक वृषभ (ऋषभ) महान हैं, उनका शासन वर दे। उनके शासन में ऋषि-परम्परा से प्राप्त पूर्व का ज्ञान आत्मिक शत्रु क्रोधादि का विध्वंसक हो। दोनों प्रकार की आत्माएँ (संसारी और सिद्ध) स्वात्मगुणों से ही चमकती हैं। अतः वे राजा हैं, वे पूर्ण ज्ञान के भण्डार हैं और आत्म-पतन नहीं होने देते।[३] वर्षा की उपमा भगवान् ऋषभदेव के देशना रुपी जल की ही सूचक है। पूर्वगत ज्ञान का उल्लेख भी जैन-परम्परा में मिलता है, अतः ऋग्वेद के पूर्वज्ञाता ऋषभ, तीर्थङ्कर ऋषभ ही माने जा सकते हैं।

'आत्मा ही परमात्मा है'[४] यह जैनदर्शन का मूलभूत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को ऋग्वेद के शब्दों में श्री ऋषभदेव ने इस रूप में प्रतिपादित किया- ''जिसके चार शृंग-अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य हैं। तीन पाद हैं- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। दो शीर्ष हैं- केवलज्ञान और मुक्ति तथा जो मन-वचन-काय, इन तीनों योगों से बद्ध अर्थात् संयत वृषभ हैं उन्होंने घोषणा की, कि महादेव (परमात्मा) मत्यों में निवास करता है।[५] अर्थात् प्रत्येक आत्मा में परमात्मा का निवास है। उन्होंने

---

१ ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम्।
हंतारं शत्रुणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्।। —ऋग्वेद १०।१६६।१

२ मखस्य ते तीवषस्य प्रजूतिमियभि वाचमृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीमामास मानुषीणां विशां देवी नामुत पूर्वयाया।। -ऋग्वेद २।३४।२

३ असूतपूर्वा वृषभो ज्यायनिमा अरय शुरुषः सन्ति पूर्वीः।
दिवो न पाता विदथस्यधीभिः क्षत्रं राजना प्रदिवोदधाथे।। -ऋग्वेद ५२।३८

४ (क) अप्पा सो परमप्पा
(ख) दामुक्तं....कारणपरमात्मानं जानाति।
-नियमसार, तात्पर्यवृत्ति, गा. ९६

५ चत्वारि श्रृङ्गार त्रयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीती महादेवो मर्त्यानाविवेश।।
-ऋग्वेद ४।५८।३

स्वयं कठोर तपश्चरण रूप साधना कर वह आदर्श जन-जन के समक्ष प्रस्तुत किया। एतदर्थ ही ऋग्वेद के मेधावी महर्षि ने लिखा है कि ''ऋषभ स्वयं आदिपुरुष थे, जिन्होंने सर्वप्रथम मर्त्यदशा में अमरत्व की उपलब्धि की थी।[६]

ऋषभदेव, विशुद्ध प्रेम-पुजारी के रूप में विख्यात थे। सभी प्राणियों के प्रति मैत्री-भावना का उन्होंने संदेश दिया। इसलिये मुद्गल ऋषि पर ऋषभदेव की वाणी का विलक्षण प्रभाव पड़ा- 'मुद्गल ऋषि के सारथी (विद्वान् नेता) केशी वृषभ जो अरिदमन के लिये नियुक्त थे, उनकी वाणी निकली, जिसके परिणामस्वरूप मुद्गल ऋषि की गायें जो दुर्धर रथ से योजित हुई दौड़ रही थीं, वे निश्चल होकर मौद्गलानी की ओर लौट पड़ीं।[७]

ऋग्वेद की प्रस्तुत ऋचा में 'अरिदमन' कर्म रूप शत्रुओं को सूचित करता है। गायें इन्द्रियाँ हैं, और दुर्धर रथ 'शरीर' के अलावा और कौन हो सकता है ? भगवान् ऋषभदेव की अमृतवाणी से अस्थिर इन्द्रियाँ, स्थिर होकर मुद्गल की स्वात्मवृत्ति की ओर लौट आयीं। इसीलिये उन्हें स्तुत्य बताया गया है- 'मधुरभाषी, बृहस्पति, स्तुति योग्य ऋषभ को पूजा-साधक मन्त्रों द्वारा वर्धित करो, वे अपने स्तोता को नहीं छोड़ते'[८] और भी एक जगह कहा है-तेजस्वी ऋषभ के लिये प्रेरित करो।[९] ऋग्वेद के रुद्रसूक्त में एक ऋचा है, उसमें कहा है— हे वृषभ ! ऐसी कृपा करो कि हम कभी नष्ट न हों।''[१०]

इस प्रकार ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर उनकी स्तुति महादेव के रूप में, सर्वप्रथम अमरत्व पाने वाले रूप में, आदर्श प्रेम-पुजारी के रूप में और अहिंसक आत्म-साधकों के रूप में की गयी है।

२. यजुर्वेद

यजुर्वेद में स्तुति करते हुए कहा गया है— मैंने उस महापुरुष को जाना है जो सूर्यवत् तेजस्वी तथा अज्ञानादि अन्धकार से बहुत दूर हैं। उसी का परिज्ञान कर मृत्यु से पार हुआ जा सकता है। मुक्ति के लिये इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं।[११] ऐसी ही स्तुति भगवान् ऋषभदेव की मानतुङ्गाचार्य द्वारा की गई है।[१२] शब्द साम्यता की दृष्टि से भी दोनों में विशेष अन्तर दृष्टिगत नहीं होता। अतः ये दोनों स्तुतियाँ किसी एक ही व्यक्ति को लक्षित करके होनी चाहियें। और वे भगवान् ऋषभदेव ही हो सकते हैं।

३. अथर्ववेद

अथर्ववेद का ऋषि मानवों को ऋषभदेव का आह्वान करने के लिये यह प्रेरणा करता है, कि-'पापों से मुक्त पूजनीय देवताओं में सर्वप्रथम तथा भवसागर के पोत को मैं हृदय से आह्वान करता हूँ। हे सहचर बन्धुओ ! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उसके आत्मबल और तेज को धारण करो।[१३] क्योंकि वे प्रेम के राजा

---

६ तन्मर्त्यस्य देवत्य सजातमग्रः । - ऋग्वेद ३१।१७

७ ककर्दवे वृषभो युक्त आसीद्
अवावचीत् सारथिरस्य केशी।
दुधेर्युक्तस्या द्रवतः सहानतः
ऋच्छन्तिष्मा निष्पदो मुद्गलानीम्।। -ऋग्वेद १०।१०।२।६

८ अनर्वाणं ऋषभं मन्द्रजिह्वं, वृहस्पति वर्धया नध्यमर्के- -ऋग्वेद १।१९०।१

९ प्राग्नये वाचमीरय -वही, १०।१८७

१० एव वभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषं न हंसी।
-वही, रुद्रसूक्त, २।३३।१५

११ वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमादित्यवर्ण तमसः पुरस्तात्।
तमेव निदित्वाति मृत्युमेति, नान्य पन्था विधतेऽयनाय।।

१२ देखिये- भक्तामर स्तोत्र, श्लोक २३।

१३ अहोमुचं वृषभं यज्ञियानां,
विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां न पातमश्विना हुं वे धिय,
इन्द्रियेण इन्द्रियं दत्तमोजः।।—अथर्ववेद, कारिका १९।४२।४

हैं, उन्होंने उस संघ की स्थापना की है, जिसमें पशु भी मानव के समान माने जाते थे, और उनको कोई भी नहीं मार सकता था।'[१४]

इस प्रकार वेदों में भगवान् ऋषभदेव का उत्कीर्तन किया गया है। साथ ही वैदिक ऋषि विविध प्रतीकों के रूप में भी ऋषभदेव की स्तुति करते हैं।

*** भगवान् ऋषभ के विविध रूप :**

१. ऋषभदेव और अग्नि

ऋग्वेद आदि में अग्निदेव की स्तुति की गई है। इस अग्निदेव की स्तुति में प्रयुक्त विशेषणों से ऐसा प्रतिबोध होता है कि वह स्तुति अग्निदेव के रूप में भगवान् ऋषभदेव की ही की गई है जैसे-जातवेदस् शब्द जो अग्नि के लिये प्रयुक्त किया है, वह जन्म से ज्ञान सम्पन्न ज्योतिस्वरूप भगवान् ऋषभदेव के लिये ही है। 'रत्नधरक्त' अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रय को धारण करने वाला, 'विश्ववेदस्' विश्व तत्त्व के ज्ञाता, मोक्ष नेता, 'ऋत्विज' धर्म के संस्थापक आदि से ज्ञात होता है, कि वह अग्नि भौतिक अग्नि न होकर आदि प्रजापति ऋषभदेव हैं। इस कथन की पुष्टि अथर्ववेद के एक सूक्त से होती है जिसमें ऋषभदेव भगवान् की स्तुति करते हुए उन्हें 'जातवेदस्' बताया है। वहाँ कहा है— 'रक्षा करने वाला, सबको अपने भीतर रखने वाला, स्थिरस्वभावी, अन्नवान् ऋषभ संसार के उदर का परिपोषण करता है। उस दाता ऋषभ को परम ऐश्वर्य के लिये विद्वानों के जाने योग्य मार्गों से बड़े ज्ञान वाला अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष प्राप्त करे।'[१५]

अग्निदेव के रूप में ऋषभ की स्तुति का एकमात्र हेतु यही दृष्टिगत होता है कि जब भगवान् ऋषभदेव स्थूल और सूक्ष्म शरीर से परिनिवृत्त होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए उस समय उनके परम प्रशान्त रूप को आत्मसात् करने वाली अन्त्येष्टि अग्नि ही तत्कालीन जन-मानस के लिये संस्मृति का विषय रह गई। जनता अग्नि-दर्शन से ही अपने आराध्यदेव का स्मरण करने लगी। इसीलिये वेदों में स्थान-स्थान पर 'देवा अग्निम् धारयन् द्रविणो-दाम्' शब्द द्वारा अग्निदेव की स्तुति की गई है।[१६] इसका अर्थ है— अपने को देव संज्ञा से अभिहित करने वाले आर्यजनों ने धन-ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले अग्नि (प्रजापति ऋषभ) को अपना आराध्यदेव धारण कर लिया।

इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान् ऋषभदेव के निर्वाण समय से ही अग्नि के द्वारा पूजा-विधि की परम्परा शुरू हो गई थी।

२. ऋषभदेव और परमेश्वर

अथर्ववेद के नवम काण्ड में ऋषभदेव शब्द से परमेश्वर का ही अभिप्राय ग्रहण किया है और उनकी स्तुति परमेश्वर के रूप में अत्यन्त भक्ति के साथ की गई है- 'इस परमेश्वर का प्रकाशयुक्त सामर्थ्य सर्व उपायों को धारण करता है, वह सहस्रों पराक्रमयुक्त पोषक है, उसको ही यज्ञ कहते हैं। हे विद्वान् लोगो! ऐश्वर्य रूप का धारक, हृदय में अवस्थित मंगलकारी वह ऋषभ (सर्वदर्शक परमेश्वर) हमको अच्छी तरह से प्राप्त हो।[१७] जो ब्राह्मण, ऋषभ को अच्छी तरह प्रसन्न करता है, वह शीघ्र सैकड़ों प्रकार के तापों से मुक्त हो जाता है, उसको सब दिव्य गुण तृप्त करते हैं।[१८]

---

१४ 'नास्य पशुन समानान् हिनास्ति' -वही

१५ पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमूषभो विभर्ति।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः।। -अथर्ववेद ९।४।३

१६ पूर्वया निविदा काव्यतासोः यमा प्रजा अजन्यत् मनुनाम्।
विवस्वता चक्षुषा द्याम पञ्च, देवा अग्निम् धारयन् द्रविणोदाम्।।

१७ आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः।। -अथर्ववेद ९।४।७

१८ शतयाजं स यजते, नैनं न्वन्त्यग्नयः जिन्वन्ति विश्वे
त देवा यो ब्राह्मण ऋषममाजुहोति।। -अथर्ववेद ९।४।१८

इस प्रकार सारे नवमकाण्ड के चतुर्थ सूक्त में भगवान् ऋषभ की परमेश्वर के रूप में स्तुति है।

३. ऋषभदेव और उनके तीन रूप

ऋग्वेद के निम्नांकित दो मंत्रों में भगवान् ऋषभदेव का जीवन-वृत्त उसी प्रकार उल्लिखित है, जैसा कि जैन-परम्परा विधान करती है। उन मंत्रों में कहा है कि-'अग्नि प्रजापति प्रथम देवलोक में प्रकट हुए, द्वितीय बार हमारे मध्य जन्म से ही ज्ञान-सम्पन्न होकर प्रकट हुए, तृतीय रूप, इनका वह स्वाधीन एवं आत्मवान् रूप है, जब इन्होंने भव-समुद्र में रहते हुए निर्मल वृत्ति से समस्त कर्मेन्धनों को जला दिया।[१९] तथा 'हे अग्रनेता ! हम तेरे इन तीन रूपों को जानते हैं, इनके अतिरिक्त तेरे पूर्व में धारण किये हुए रूपों को भी हम जानते हैं, तथा तेरा जो निगुढ परमधाम है, वह भी हमें ज्ञात है, और जिससे तू हमें प्राप्त होता है उस उच्च मार्ग से भी हम अनभिज्ञ नहीं है।'[२०]

४. ऋषभदेव और रुद्र

केशी को समस्त ज्ञातव्यं विषय के ज्ञाता, सबके सखा, सभी के प्रियकारी और सर्वोत्कृष्ट आनन्दकारी माना है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूत्र में प्रकाशमय, सूर्यमण्डल तथा ज्ञानमयी जटाधारी को केशी कहा गया है;[२१] केशी सूत्र की अन्तिम ऋचा में वर्णित केशी द्वारा रुद्र के साथ जल पीने की घटना का वर्णन है। केशी, वातरशना मुनियों के अधिनायक थे। रुद्र ने उनके साथ जलपान किया, अतः उनके रुद्र स्वभाव में शीतलता, दया व जीवरक्षण की प्रवृत्तियाँ सहज ही उद्भूत हो गईं। अतः वैवस्वत मनु ने रुद्र को तीक्ष्ण शस्त्र को धारण करने वाले उग्र स्वभावी कहा है; साथ ही पवित्र शीतल स्वभावी और व्याधियों के उपशामक भेषज भी कहा है। एक पात्र में जलपान करने से उनकी वृत्ति में शीतलता आ गई अतः उन्हें जल के रूप में शीतलता बरसाने वाला 'वृष' अथवा 'वृषभ' कहा गया। वेदों में अनेक स्थलों पर वृषभ का अर्थ 'वर्षा करने वाला' इस रूप में ग्रहण किया है। रुद्र की इस द्विरूपता का वर्णन पुराणों में मिलता है। कल्प की आदि में ब्रह्मा के पुत्र कुमार नीललोहित सात बार रोये थे, रोने के कारण उनका रुद्र नाम हुआ, साथ ही सात बार रोने से उनके सात नाम पड़े -रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, अशनि, भव, महादेव और ईशानकुमार। ये नौ नाम शतपथ ब्राह्मण में अग्नि के विशेषण रूप में उल्लिखित हैं।[२२] और भगवान् वृषभदेव को ही अग्नि के रूप में पूजा जाता है, यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है, अतः रुद्र, महादेव, पशुपति आदि नाम ऋषभदेव के ही नामान्तर हैं।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में रुद्र की जो स्तुति की गई है, वहाँ रुद्र के स्थान पर 'वृषभ'[२३] का उल्लेख पाँच बार आया है, वहाँ रुद्र को 'आर्हत्' शब्द से सम्बोधित किया है। यह आर्हत् उपाधि भगवान् ऋषभदेव की ही हो सकती है, क्योंकि उनका चलाया हुआ धर्म 'आर्हत धर्म' के नाम से विश्वविश्रुत है।

'शतरुद्रिय स्तोत्र' में रुद्र की स्तुति के छियासठ मंत्र हैं जहाँ रुद्र को 'शिव, शिवतर तथा शंकर'

---

१९ दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरूप द्वितीय परि जातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिंधान एवं जाते स्वाधीः।।
-ऋग्वेद १०।४५।१

२० विद्या ते अग्रे त्रेधा त्रयाणि विद्या ते धाम विभृता पुरुन्ना।
विद्या ते नाम परम गुहा यद्विद्या तमुत्सं यत आजगंथ।। -ऋग्वेद १०।४५।२

२१ केश्याग्निं विषं केशी विभति रोदसी।
केशी विश्व स्वदृंशे केशीदं ज्योतिरुच्यते।। -ऋग्वदे १०।१२६

२२ तान्येतानि अष्टौ रुद्रः शर्वः पशुपति उग्रः अशनिः भवः।
महान देवः ईषानः अग्निरूपाणि कुमारो नवम्।।
- शतपथ ब्राह्मण ६/२/३१८

२३ एव वभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीयं न हंसि। -ऋग्वेद २।३३।१५

कहा गया है।[२४] श्वेताश्वतर उपनिषद् में रुद्र को 'ईश, महेश्वर, शिव और ईशान' कहा गया है। मैत्रायणी उपनिषद् में इन्हें 'शम्भु' कहा गया है। इसके अतिरिक्त पुराणों में वर्णीत 'माहेश्वर, त्र्यंबक, हर, वृषभध्वज, भव, परमेश्वर, त्रिनेत्र, वृषांक, नटराज, जटी, कपर्दी, दिग्वस्त्र, यती, आत्मसंयमी, ब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता आदि विशेषण पूर्णरूपेण ऋषभदेव तीर्थङ्कर के ऊपर भी लागू होते हैं। शिवपुराण में शिव का आदि तीर्थंकर वृषभदेव के रूप में अवतार लेने का उल्लेख है।[२५] प्रभास पुराण में भी ऐसा ही उल्लेख प्राप्त होता है।[२६]

५. ऋषभदेव और शिव

शिव और ऋषभ की एकता को सिद्ध करने वाले कुछ अन्य लोकमान्य साक्ष्य भी हैं—

वैदिक मान्यता में शिव की जन्म तिथि शिवरात्रि के रूप में प्रतिवर्ष माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन व्रत रखकर मनायी जाती है। जैन परम्परा के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के शिवगति गमन की तिथि भी माघ कृष्णा चतुर्दशी ही है, जिस दिन ऋषभदेव को शिवत्व उत्पन्न हुआ था। उस दिन समस्त साधु-संघ ने दिन को उपवास रखा तथा रात्रि में जागरण करके शिवगति प्राप्त ऋषभदेव आराधना की, इस रूप में यह तिथि 'शिवरात्रि' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

वैदिक परम्परा में शिव को कैलाशवासी कहा गया है। जैन परम्परा में भी भगवान् ऋषभ की शिव-साधना रूप तप और निर्वाण का क्षेत्र कैलाश पर्वत है।

शिव के जीवन का एक प्रसंग है, कि उन्होंने तप में विघ्न उपस्थित करने वाले कामदेव को नष्ट कर शिवा से विवाह किया। शिव का यह प्रसंग भगवान् ऋषभ से पूर्णतः मेल खाता है, कि उन्होंने मोह को नष्ट कर शिवा देवी के रूप में 'शिव' सुन्दरी मुक्ति से विवाह किया।

उत्तरवैदिक मान्यता के अनुसार जब गंगा आकाश से अवतीर्ण हुई, तो चिरकालपर्यन्त वह शंकर की जटा में ही भ्रमण करती रही, पश्चात् वह भूतल पर आई। यह एक काल्पनिक तथ्य है, जिसका वास्तविक अभिप्राय यही है कि शिव अर्थात् भगवान् ऋषभदेव की स्वसंवित्ति रूपी ज्ञानगंगा असर्वज्ञ दशा तक उनके मस्तिष्क में ही प्रवाहित रही, तत्पश्चात् सर्वज्ञ होने के बाद वही धारा संसार का उद्धार करने के लिए वाणी द्वारा प्रवाहित हुई।

दिगम्बर जैन पुराणों में जैसे ऋषभदेव के वैराग्य का कारण नीलांजना नाम की अप्सरा थी उसी प्रकार वैदिक परम्परा में नारद मुनि के द्वारा शंकर-पार्वती के सम्मुख 'द्युत-प्रपञ्च' का वर्णन है और उससे प्रेरित होकर शिव की संसार से विरक्ति, परिग्रह-त्याग तथा आत्म-ध्यान में तल्लीनता का सविस्तृत उल्लेख किया है।

शिव के अनुयायी गण कहलाते हैं और उनके प्रमुख नायक शिव के पुत्र गणेश थे इसी प्रकार भगवान् ऋषभदेव के तीर्थ में भी उनके अनुयायी मुनि गण कहलाते थे और जो गण के अधिनायक होते थे वे गणाधिप, गणेश या गणधर कहलाते थे। भगवान् ऋषभदेव के प्रमुख गणधर भरतपुत्र वृषभसेन थे।

शिव को जैसे डमरु और नटराज की मुद्रा से गीत, वाद्य आदि कलाओं का प्रवर्तक माना जाता

---

२४ यजुर्वेद (तैत्तिरियां संहित) १।८।६; वाजसनेयी ३।५७।६३

२५ इत्थं प्रभाव ऋषभोऽवतारः शंकरस्य मे।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितवस्तव।।
ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत्।
स्वर्ग्यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः।। -शिवपुराण ४।४७-४८

२६ कैलाशे विमल रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारः च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः।। -प्रभास पुराण ४९
-शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।१८

है उसी प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्र भरत आदि को सम्पूर्ण कलाओं में पारंगत बनाया।

वैदिक परम्परा में शिव को 'माहेश्वर' कहा है। पाणिनी ने 'अ इ उ ण' आदि सूत्रों को महेश्वर से प्राप्त हुए बताया है और जैन परम्परा ऋषभदेव को महेश्वर मानती है। उन्होंने सर्वप्रथम अपनी पुत्री 'ब्राह्मी' को 'ब्राह्मीलिपि' अर्थात् अक्षर विद्या का परिज्ञान कराया।

वैदिक परम्परा में शिव का वाहन 'ऋषभ' बतलाया है और जैन मान्यता के अनुसार भगवान् ऋषभदेव का चिह्न 'वृषभ' है।

वैदिक-परम्परा में शिव को त्रिशूलधारी बतलाया है। जहाँ भी शिव की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं वहाँ उनका चिह्न स्वरूप त्रिशूल अंकित किया जाता है। जैन-परम्परा के अनुसार वह त्रिशूल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र का प्रतीक है।

इस प्रकार शिव और ऋषभदेव के सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर मात्र इन दोनो में समानता ही दृष्टिगोचर नहीं होती वरन् यह निष्कर्ष निकलता है कि यह ऐक्य, किसी एक ही व्यक्ति की ओर इंगित करता है, और वह व्यक्ति भगवान् ऋषभदेव ही हैं, अन्य कोई नहीं।

६. ऋषभदेव और हिरण्यगर्भ

ऋग्वेद की एक ऋचा सें भगवान् ऋषभदेव को 'हिरण्यगर्भ' बताया है। वे प्राणीमात्र के स्वामी थे, उन्होंने आकाश सहित पृथ्वी को धारण किया, हम हवि के द्वारा किस देव की आराधना करें ?[२७]

आचार्य सायण ने इस पर भाष्य करते हुए लिखा है -'हिरण्यगर्भ अर्थात् हिरण्यमय अण्डे का गर्भभूत। अथवा जिसके उदर में हिरण्यमय अण्डा गर्भ की तरह रहता है, वह हिरण्यगर्भ प्रपञ्च की उत्पत्ति से पूर्व, सृष्टि-रचना के इच्छुक परमातमा से उत्पन्न हुआ।'[२८] इस प्रकार सायण ने हिरण्यगर्भ का अर्थ प्रजापति लिया है।

महाभारत में हिरण्यगर्भ को योग का वक्ता बताया है-'हिरण्यगर्भ योगमार्ग के प्रवर्तक हैं, उनसे और कोई पुरातन नहीं।'[२९] ऋग्वेद भी 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' लिखकर हिरण्यगर्भ की प्राचीनता को सूचित करता है।

जैन परम्परा के अनुसार भगवान् ऋषभदेव पूर्वभव में सर्वार्थसिद्ध विमान में सर्वोत्कृष्ट ऋद्धि-सम्पन्न देव थे। वहाँ से च्यव कर जब मरुदेवी की कुक्षि में आये, तो कुबेर ने नाभिराय का भवन हिरण्य की वृष्टि से भरपूर कर दिया, अतः जन्म के पश्चात् भगवान् 'हिरण्यगर्भ' के रूप में प्रसिद्ध हो गये।[३०]

७. ऋषभदेव और ब्रह्मा

लोक में ब्रह्मा नाम से प्रसिद्ध जो देव है, वह भगवान् ऋषभदेव को छोड़कर दूसरा नहीं है। ब्रह्मा के अन्य अनेक नामों में निम्नलिखित नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं-

---

२७ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।
-ऋग्वेद १०।१२१।१

२८ 'हिरण्यगर्भः हिरण्यमयस्याण्डस्य गर्भभूतः प्रज्ञापतिर्हिरण्यगर्भः। तथा च तैत्तिरीयकं -प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः प्रजापतेरनुरूपाय। यद्धा हिरण्यमयोऽण्डो गर्भवद्यस्योदरे वर्तते सोऽसौ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ उच्यते। अग्रे प्रपञ्चोत्पत्तेः प्राक् समवर्तत् मायाध्यक्षात् सिसृक्षोः परमात्मनः साकाशात् समजायत।... सर्वस्य जगतः परीश्वर आसीत्...।' -तैत्तिरिधारण्यक भाष्य-सायणाचार्य, ५।५।१।२

२९ हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः। -महाभारत, शान्तिपर्व, ३४९

३० (क) सैषा हिरण्यमयी वृष्टिः धनेशेन निपातिता।
विभोहिरण्यगर्भत्वमिव बोधयितुं जगत्।। -महापुराण१२।९५
(ख) गब्भट्ठिअस्स जस्स उ हिरण्णवुट्ठी सकचणा पडिया।
तेणं हिरण्णगब्भो जयम्मि उवगिज्जए उसभो।। -पद्मपुराण३।६८

हिरण्यगर्भ, प्रजापति, लोकेश, नाभिज, चतुरानन, स्रष्टा, स्वयंभू। इन सबकी यथार्थ संगति भगवान् ऋषभदेव के साथ ही बैठती है, जैसे-

हिरण्यगर्भ - जब भगवान् ऋषभदेव माता मरुदेवी के गर्भ में आये थे उसके छह माह पूर्व ही अयोध्या नगरी में हिरण्य-सुवर्ण तथा रत्नों की वृष्टि होने लगी थी, अतः आपका हिरण्यगर्भ नाम सार्थक है।

प्रजापति - कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने के बाद भगवान् ने असि, मषि, कृषि आदि का उपदेश देकर प्रजा की रक्षा की, अतः भगवान् 'प्रजापति' कहलाते थे।

लोकेश - अखिल विश्व के स्वामी होने से भगवान् 'लोकेश' कहलाते थे।

नाभिज - नाभिराय के पुत्र होने से भगवान् 'नाभिज' कहलाए।

चतुरानन - समवसरण में चारों दिशाओं में भगवान् का दर्शन होता था, अतः भगवान् 'चतुरानन' कहलाए।

स्रष्टा - भोगभूमि के नष्ट होने के बाद देश, नगर आदि का विभाग, राजा, प्रजा, गुरु, शिष्य आदि का व्यवहार, विवाह-प्रथा आदि के भगवान् ऋषभदेव आद्य प्रवर्तक थे, अतः 'स्रष्टा' कहे जाते थे।

स्वयम्भू - दर्शन-विशुद्धि आदि भावनाओं से अपने आत्म-गुणों का विकास कर स्वयं ही आद्य तीर्थङ्कर हुए थे, अतः 'स्वयम्भू' कहलाते थे।

८. ऋषभदेव और विष्णु

वैदिक साहित्य में विष्णु देव का मुख्य स्थान है। भागवतपुराण में विष्णु का ही आठवाँ अवतार ऋषभ को माना है, अतः विष्णु और ऋषभ एक ही व्यक्ति सिद्ध होते हैं।

जैन अनुश्रुतियों में विष्णु के इसी लोकोत्तर परमोपकारी व्यक्तित्व की स्तुति की गई है, जहाँ विष्णु के सत्ताईस नामों का उल्लेख किया गया है[३१] जिनकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—

१. **विष्णु-** केवलज्ञान से व्यापक।

२. **त्रिविक्रम-** सम्यग्दर्शन, और सम्यग्चारित्र रत्नत्रय रूप तीन शक्तियों से सम्पन्न अथवा तीन लोक में विशिष्ट क्रम सर्वोच्च स्थान को प्राप्त।

३. **शौरि-** शूरवीर।

४. **श्रीपति-** अभ्युदय-निश्रेयस्रूप श्री के अधिपति।

५. **पुरुषोत्तम-** त्रेसठ शालाका पुरुषों में उत्तम।

६. **वैकुण्ठ-** गूढ़ज्ञानशालिनी माँ के पुत्र।

७. **पुण्डरीकाक्ष-** आपकी अक्ष-आत्मा पुण्डरीकवत् श्रेष्ठ है।

---

३१ विष्णुस्त्रिविक्रमः शौरिः श्रीपतिः पुरुषोत्तमः।
वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षो हृषीकेशो हरिः स्वभूः।।
विश्वंभरोऽसूरध्वंशी माधवो बलिबन्धनः।
अधोक्षजो मधुद्वेषी केशवो विष्टरश्रवाः।।
श्रीवत्सलाञ्छनः श्रीमानच्युतो नरकान्तकः।
विष्वक्सेनश्चक्रपाणिः पद्मनाभो जनार्दनः।।
श्रीकण्ठ...
-पं. आशाधर विरचित सहस्रनाम ब्रह्मशातकम् श्लोक-१००-१०२

८. **हृषीकेश-** हृषीक-इन्द्रियों को वश में करने वाले।

९. **हरि-** पापों का हरण करने वाले।

१०. **स्वभू-** ज्ञातव्य वस्तु के स्वयं ज्ञाता हैं।

११. **विश्वम्भर-** विश्व का भरण-पोषण, चतुर्गति के दुःखों से बचाने वाले हैं।

१२. **असुरध्वंसी-** मोहकर्म रूप असुर का नाश करने वाले।

१३. **माधव-** मा-बाह्य और आन्तरिक लक्ष्मी के धव-स्वामी हैं।

१४. **बलिबन्धन-** बलि-कर्म बन्धन को नष्ट करने वाले हैं।

१५. **अधोक्षज-** अक्ष-इन्द्रियों को, अधः जीतने वाले साधुओं को ध्यान से प्राप्त होते हैं।

१६. **मधुद्वेषी–** मधु-मोहरूप परिणाम में दुःखदायी शहद का सेवन नहीं करने वाले हैं।

१७. **केशव–** क-आत्म-स्वरूप की प्राप्ति में ईश-समर्थ मुनियों के, वं-आश्रयभूत हैं।

१८. **विष्टरश्रवा–** विस्तृत श्रुतज्ञानसम्पन्न हैं।

१९. **श्रीवत्सलांछन–** श्रीवत्स के चिन्ह से युक्त हैं। अथवा श्रीवत्स-कामदेव को अपने सौन्दर्य से लांछित-तिरस्कृत करने वाले हैं।

२०. **श्रीमान्–** अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग लक्ष्मी के स्वामी।

२१. **नरकान्तक–** नरक के विनाशाक हैं।

२२. **विष्वक्सेन–** सम्यक् रूप से उनकी शरण में सभी प्रकार के जीव वैर-विरोध रहित होकर रहते हैं।

२३. **अच्युत–** स्व-स्वरूप से च्युत नहीं होने वाले।

२४. **चक्रपाणि–** हाथ में चक्र का चिन्ह है, अथवा धर्मचक्र के प्रवर्तक होने से सर्वशिरोमणि हैं।

२५. **पद्मनाभ–** पद्मवत् नाभि युक्त हैं।

२६. **जनार्दन–** भव्य जीवों को उपदेश देने वाले।

२७. **श्रीकण्ठ–** मुक्तिरूपी लक्ष्मी के धारक।

आचार्य जिनसेन ने भी ऐसे ही साभिप्राय सार्थक शब्दों द्वारा विष्णु के रूप में भगवान् ऋषभदेव की स्तुति की है।

९. ऋषभदेव और गायत्री मंत्र

वैदिक दर्शन में गायत्री-मंत्र को सर्वाधिक प्रधानता प्राप्त है।[३२] छान्दोग्योपनिषद् में गायत्री की उपासना को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। उपासना की विभिन्न मुद्राओं तथा जप की प्रणालियों का भी वहाँ विस्तृत वर्णन मिलता है।[३३] ऋक तथा सामदेव के भाष्यानुसार उक्त मंत्र का अर्थ निम्न प्रकार से किया है-'जो सवितृ-देव (सूर्यदेव) हमारी धी शक्ति को प्रेरणा करते हैं, हमें उन्हीं सवितृ-देव के प्रसाद से प्रशंसनीय अन्नादि रूप फल मिलता है।'

प्रस्तुत गायत्री-मंत्र की व्याख्या को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो प्रतीत होता है, कि उसमें सूर्य की

---

३२ ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् आपो ज्योतिरसोमृतं ब्रह्माः।।
-गायत्री मंत्र, ऋग्वेद ३।६२।१०

३३ छान्दोग्योपनिषद् ३।१२।१

पूजा के रूप में भगवान् ऋषभदेव की ही पूजा सिद्ध होती है। यथा-'ॐ-पञ्च परमेष्ठी; भूः-सर्वश्रेष्ठ; भुवः-जन्म-जरा-मरण आदि दुःखों के मुक्त होने के लिए रत्नत्रय मार्ग के उपदेष्टा; स्वः-शुद्धोपयोग में स्थित; तत्-उस ॐ वाचक परमेष्ठी को; जो सवितुः —हिताहित का मार्ग बतलाने के कारण त्रिलोक के लिये सुखदायक है; वह वरेण्यम् -उपासना के योग्य है। भर्गोः —रागादि दोष से दूषित हम लोगों के लिए प्रतिपादित कल्याण-मार्ग को; देवस्य —तीर्थङ्कर देव को, धीमहि —धारण करते हैं; उन तीर्थङ्कर ऋषभदेव के उपदेश से; नः -हमारी, धियः-बुद्धि प्रचोदयात् —सत्कार्यों में प्रवृत्त हो। अर्थात् पञ्चपरमेष्ठी स्वरूप आदि ब्रह्म श्री ऋषभदेव के प्रसाद से हमारी बुद्धि राग-द्वेष से रहित होकर शुद्धोपयोग में लगे।

इस प्रकार सूर्यदेव के रूप में भगवान् ऋषभदेव की ही स्तुति की गई है। अग्नि (ब्रह्मा) के पर्यायवाची नामों में सूर्य को भी अग्नि कहा है, जो स्पष्टतया ऋषभदेव की ओर संकेतित किया गया है। इस प्रकार अग्निदेव, विष्णुदेव, सूर्यदेव और ऋषभदेव सभी एकार्थक हैं।

१०. ऋषभदेव और ऋषि पंचमी

भाद्रपद शुक्ला पंचमी जैनेतर वर्ग में 'ऋषि पञ्चमी' के नाम से सर्वत्र मनाई जाती है। यही पञ्चमी जैन परम्परा में 'संवत्सरी' के नाम से विश्रुत है। जैन परम्परा में इस पर्व को सब पर्वों का राजा कहा गया है। जैनों का आध्यात्मिक पर्व होने से यह 'पर्वाधिराज' है। इस दिन सर्वोतम आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिए प्रत्येक जैन यत्नशील रहता है, त्याग-तपस्या, क्षमा, निष्परिग्रहता आदि आत्मिक गुणों को विकसाने वाला, स्नेह और प्रेम की गंगा बहानेवाला यह सर्वोत्कृष्ट पर्व है। वैदिक और ब्राह्मण परम्परा ने भी इस दिवस को सर्वोच्च प्रधानता दी है। एक ही दिन भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध ये दोनों पर्व किसी समान तत्त्व को लेकर हैं, और वह तत्त्व ऋषभदेव का स्मरण ही हो सकता है। आर्यजाति आरम्भ से ही ऋषभदेव की भक्ति में ओत-प्रोत होकर उनका स्मरण करती थी, और इस निमित्त से भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी पर्व के रूप में मनाई जाती थी। आगे चलकर जैन परम्परा निवृत्ति मार्ग की ओर मुड़ी, तब उसने इस पञ्चमी को आत्मिक शुद्धि का रूप देने के लिए 'संवत्सरी' पर्व के रूप में मनाना शुरू कर दिया; जबकि वैदिक परम्परा के अनुयायियों ने अपनी पूर्व परम्परा को ही चालू रखा। वस्ततुः 'ऋषि पञ्चमी' और 'ऋषभ' इस नाम में एक ही ध्वनि समाई हुई है। ऋषि पञ्चमी के स्थान पर 'ऋषभ पञ्चमी' शुद्ध नाम होना चाहिये और उसी का अपभ्रंश होकर कालान्तर में यह पर्व 'ऋषभ पञ्चमी' के स्थान पर 'ऋषि पञ्चमी' के रूप में बोला जाने लगा होगा। यदि यह कल्पना ठीक है, तो जैन और जैनेतर दोनों परम्पराओं में ऋषभदेव की समान मान्यता की पुष्टि होती है।[३४]

११. वातरशना श्रमण

जैनधर्म भारत का बहुत ही प्राचीन धर्म है। यह धर्म श्रमण परम्परा का प्राचीनतम रूप है। हजारों वर्षों के अतीत में वह विभिन्न नामों द्वारा अभिहित होता रहा है। वैदिककाल में वह 'वातरशना मुनि' के नाम से विश्रुत रहा है।

'ऋग्वेद' में न केवल इन मुनियों का नाम आया है, अपितु उनको या उनकी एक विशेष शाखा को 'वातरशना मुनि' कहा गया है।

'अतीन्द्रियार्थदर्शी वातरशन मुनि मल धारण करते हैं, जिससे पिंगलवर्ण वाले दिखायी देते हैं। जब वे वायु की गति को प्राणोपासना द्वारा धारण कर लेते हैं, अर्थात् रोक देते हैं तब वे अपनी तप की महिमा से दीप्तिमान होकर देवता स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। सर्व लौकिक व्यवहार छोड़कर वे मौनेय की अनुभूति में कहते हैं ''मुनिभाव से प्रमुदित होकर हम वायु में स्थित हो गये है। मर्त्यो ! तुम हमारा शरीर मात्र

३४ चार तीर्थङ्कर-पं. सुखलालजी संघवी, पृ.५।